Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. VI, Issue XI,July - 2013, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

स्वातंत्र्योत्तर मनोवैज्ञानिक उपन्यास–नारी के मन–मस्तिष्क का द्वन्द्व

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. VI, Issue XI, July - 2013, ISSN 2230-7540

स्वातंत्र्योत्तर मनोवैज्ञानिक उपन्यास–नारी के मन–मस्तिष्क का द्वन्द्व

Swatantrayottar Manovaigyanik Upanyas – Naari Ke Man – Mastishka Ka Dwand

Dr. Deep Chand

Phd Kurkshetra University

---------------------------♦-----------------------------

सदियों पहले ही कवि बिहारीलाल ने '' या अनुरागी चित्त की गति समुझे नहिं कोय '' कहकर चित्त से संबंद्ध उसकी अप्रत्याषित प्रतिक्रियाओं और गतिविधियों की ओर संकेत कर दिया, जो उसकी अरूपता, भाऊकता और चंचलता के कारण पूर्णतः सत्य–सिद्ध होता है। सैद्धांतिक पक्ष और शास्त्रीय निरूपण के आधार पर मन का विष्लेषण एक अनुषासन के रूप में विकसित और स्थापित हो जाने के बाद भी इस की स्थिति और संभावनाओं के बारे में कोई दो टूक शब्दों में कुछ कह देना बिल्कुल सरल नहीं है। व्यक्तिगत की कसौटी और अप्रत्याषित प्रतिक्रियाओं का प्रेरणाश्रोत माना जाने वाला यह '' मन '' जब हमारे साहित्यकारों की विषेष रूचि का विषय बना, तब जहाँ काव्य के क्षेत्र में '' कामायनी '' जैसे अप्रतिम महाकाव्य का सर्जन हुआ, वहीं औपन्यासिक क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की एक विलक्षण–धारा ही फूट निकली, जो प्रेमचन्द की पूर्ववर्ती औपन्यासिक–विद्या से नितांत भिन्न सिद्ध हुई। इन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पुरूष की अपेक्षा अत्यंत जटिलतम प्रतीत होने वाले '' नारी–मन '' के विष्लेषण के प्रति ही लेखकीय रूझान अधिक है क्योंकि चुनौतीपूर्ण लेखन में ही साहित्यकारों की सच्ची प्रतिभा निखरती है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास साहित्य के अग्रणी लेखक इलाचन्द्र जोषी का मत है '' नारी देखने में जितनी सलीम है, अनुभूति में उतनी ही असीम, वार्तालाप में जितनी सरल है, मनोविष्लेषण करने पर उतनी ही जटिल, व्यवहार में जितनी कुषल है, तर्क की कसौटी पर उतनी ही असामान्य। अपनी नैतिक, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक दुर्बलताओं से भी वह परिचित है और मानसिक एवम् आध्यात्मिक दृढ़ता की जानकारी भी वह रखती है। अपनी भावुक प्रकृति, कोमल स्वभाव और दया–वृत्ती का भी उसे ज्ञान है, पुरूष के शोधक स्वभाव का भी उसे पता है।''

उपन्यासों का इतिवृत्त जब स्थूल सामाजिक न होकर सूक्ष्म मानसिक हो जाता है, जब लेखकीय प्रतिबद्धता नहीं अधिक चुनौतीपूर्ण हो जाती है। इस लिए नारी के मन–मस्तिष्क के द्वन्द्व के चित्र प्रस्तुत करते समय उपन्यासकारों ने ऐसा उपक्रम किया कि वे अपने नारी पात्रों को संघर्ष की स्थिति से पूरी शक्ति के साथ उधार सकें और उन पात्रों को परिपूर्ण सिद्ध करने के साथ–साथ उन्हें पाठकीय संवेदना भी प्राप्त करा सकें। इसके लिए इन उपन्यासकारों ने क्रमागत नैतिक मूल्यों, मानवीय संबंधों की नयी व्याख्या तक कर डाली। इस प्रयत्न में उपन्यासकारों की कलम की राह में जो वैयक्तिक और सामाजिक–तत्व अड़चन से प्रतीत हुए, उनका उन्होंने या तो उपहास कर दिया या उच्छेदन। फिर भी वे अपने नारी पात्रों को पूर्णतः संघर्ष मुक्त नहीं कर पाये। इसका मुख्य कारण नारी पात्रों की परिपूर्णता के संदर्भ में उनकी वैचारिक भिन्नता ही है, यथा जैनेन्द्र के अनुसार नारी स्वंय के आत्मलय से परिपूर्ण होती है, जबकि '' अज्ञेय नारी के आत्मलय में विष्वास नहीं करते यह नारीत्व की सबसे बड़ी विडम्बना है . . . . कैसी विडम्बना है स्त्री की शक्ति की कि उसका श्रेष्ठ दान है–स्वंय अपना लय–अपना विनाष।''[2] कोई भी उपन्यासकार क्यों न यह कहे कि वह अपने पात्रों का सर्जक मात्र है. वह न उनके व्यवहार में, न ही उनके व्यक्तित्व विकास में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करता है, फिर भी यथार्थ स्थिति यह है कि उपन्यासकार अपने पात्रों के माध्यम गंतव्य तक पहुँचने के लिए पात्रों को घटनाओं का ऐसा संबल प्रदान करता है कि कुछ ऐसे कर बैठने के लिए विवष हो जाते हैं, जो संवेदनषील पाठकीय दृष्टि में अषास्त्रीय, अव्यावहारिक, असामाजिक, अनैतिक और अभद्र हो। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में विवाहिता नारियों का अन्य पुरूष से प्रेम करना, उसके साथ दैहिक संबंध स्थापित करना अथवा पति द्वारा ही ऐसे कार्यों के लिए पत्नि को प्रेरित किया जाना नारी पात्रों को सबसे बड़ी त्रासदी है। ऐसी त्रासदायक परिस्थितियों के केन्द्र में रहने के लिए विवष नारी के मन–मस्तिष्क के द्वन्द्व की परिणति कहीं जीवन से समझौते में है, तो कहीं विद्रोह में और कहीं आत्मघात में थी।

आलोच्य विषय के निरूपणार्थ जिन प्रतिनिधि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को इस अध्याय में लिया गया है, वे हैं – सुखदा, व्यतीत (जैनेन्द्र कुमार). अंधेरे बन्द कमरे (मोहन राकेष) अनदेखे अनजानपुल, शह और मात (राजेन्द्र यादव) पथ की खोज, अजय की डायरी (डॉ. देवराज) डूबते मस्तूल, दो एकान्त (नरेष मेहता) काली आँधी, डाकबंगला (कमलेष्वर) वे दिन (निर्मल वर्मा) अन्य प्रवृत्तियों से संबंद्ध उपन्यासों में विवेच्य विषय के विष्लेषण की आवष्यकता और उपन्यास साहित्य की विपुलता की दृष्टि में रखते हुए, इसकी पूरी संभावना है कि विवेच्य विषय से संबंध कुछ और मनोवैज्ञानिक उपन्यास छूट गये हैं।

मानसिक उहापोह और उथल–पुथल ही मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की आधार–भूमि है, जिसका प्रभावपूर्ण प्रस्तुतीकरण और उस पर व्यक्ति की विभिन्न बाहय एवं मानसिक प्रतिक्रियाओं को सतर्कता और सबल मनोवैज्ञानिक सैद्धांतिकता के संबल चित्रित करने में जैनेन्द्र की लेखनी का अप्रतिम स्थान है। स्वातंत्र्योत्तर काल–खण्ड में प्रणीत उनकी उपन्यास–श्रृखंला की प्रथम रचना सन् 1952 ई. में प्रकाषित '' सुखदा '' है, जिसमें लेखक ने उपन्यास के प्रमुख नारी–पात्र सुखदा के व्यक्तित्वोंमीलन में पारिवैषिक और बौद्धिकता के स्तर पर बुद्धितत्व को अधिक अवसर देते हुए, उसके प्रभाओं और प्रतिक्रियाओं के माध्यम सुखदा के आंतरिक द्वन्द्व का धार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। पूर्वदीप्तिषैली में आरम्भ होने वाले इस उपन्यास में सुखदा के पश्चात्ताप पूर्ण शब्दों में ही उसके आंतरिक संघर्ष की अभिव्यक्ति तो हो जाती है परन्तु उस बिन्दु तक पहुँचने के लिए

www.ignited.in

उसके जीवन और व्यक्तित्व–विकास पर क्रमिक ढंग से दृष्टिपात करना आवष्यक है।

सुखदा का जीवन ऐसे पारिवारिक वातावरण में आरम्भ होता है कि बाल्यकाल से ही उसमें सर्वत्र विजय पाने की प्रबल आकांक्षा के बीज अंकुरित होने लगते हैं, क्योंकि उसकी लगन और इच्छा शक्ति ही कुछ ऐसी थी। लेखकीय वक्तव्य में '' अनेकों की प्रषंसा पाई। बहु तेरी नामवरी पाई। लोग उसे सूरमा कहते थे। उसके दर्षन तक के लिए आते थे। ''[1]

'' सुखदा '' – जैनेन्द्र कुमार, पृ.सं. 7

– वही – पृ.सं. 9

सुसंपन्न परिवार में पली – बढ़ी कुषाग्र बुद्धवाली इस बालिका का अपने पारिवैषिक प्रभाव के कारण कन्यारूप में अपने दांपत्य जीवन के बारे में ऐसी कल्पना करना समुचित ही प्रतीत होता है, जैसे '' आमदनी सात–आठ सौ रूपये होनी चाहिए। मोटर तो पास होना अनिवार्य ही है।

विवाह के पूर्व एक प्रकार से मैं ने अपने मन में जान लिया था कि मुझे कहाँ विवाह करना है।''[1] लेकिन सुखदा की आषाओं को तब एक ऐसा जबरदस्त झटका लगता है, जब उसके माता–पिता मासिक डेढ़ सौ की आमदनी वाले सहृदयी कांत को उसके पति के रूप में चुनते हैं। पति के रूप में कांत को स्वीकार करना ही सुखदा के जीवन चक्र की गति को अंतर्द्वन्द्व की राह में अग्रसर कर देता है। कांत और सुखदा के प्रवृत्तिगत–तत्व उनकी भौतिक पहचान दिलाने वाले तत्वों के विलोम होने के कारण उनके दांपत्य जीवन में एक तरफा टकराहट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पत्नि की स्वच्छन्दता–प्रिय–प्रवृत्ती से सुपरिचित कांत का सहृदय पत्नि को निर्बन्ध छोड़ देना ही श्रेयस्कर समझ बैठता है, क्योंकि वह इस तथ्य से भी सुपरिचित है कि वह पत्नि की भौतिकवादिता को संतुष्ट करने में समर्थ नहीं है। इस बिन्दु पर अर्थात् पत्नि को यथोचित स्वाधीन छोड़ देने के संदर्भ में कांत और वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास '' अचल मेरा कोई का सुधाकर एक जैसे प्रतीत होते हैं, तो दूसरी ओर अपने–अपने पति से क्रमषः सुखदा और कुन्ती के असंतुष्ट होने के कारण भिन्न–भिन्न हैं। सुखदा विलास वैभव की अप्राप्ति से और कुन्ती अपेक्षित प्रेम की अप्राप्ति से बैचेन हो जाती है और

' जैनेन्द्र के उपन्यासों के नारी – चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल '' – बिजली प्रभा प्रकाष पृ.सं. 166

दोनों में समता यह है कि दानों अपने पतियों के प्रति एक जैसा विद्रोही कदम उठाती है।

दाम्पत्य जीवन के आरम्भ के साथ–साथ सुखदा के व्यक्तित्व में विद्यमान मन और मस्तिष्क के संघर्ष का विष्लेषण करते हुए डॉ. बिजली प्रभा प्रकाष कहती है– '' सुखदा के जीवन में महान् परिवर्तन लाने का श्रेय उसकी दमित काम–वासना को भी है, मन पसन्द विवाह न होना, आर्थिक रूप से असमर्थ तथा उसकी पूर्ण कामाकांक्षाओं को संतुष्ट न कर पाने वाला कान्त का कमनीय व्यक्तित्व सुखदा के अचेतन मन में एक वित्ष्णा–सी भर देता है किन्तु चेतन मन उसे दबाने का प्रयत्न करता है। अवसर पाते ही अचेतन तीव्र रूप से विस्फोटित हो उठता है।''[1] सुखदा के अघेतन का यह विस्फोट क्रांतिकारी लाल के प्रति उसके आकर्षित होने में पर्यवतित होता है।

उपन्यास में सुखद के व्यक्तित्व पर बुद्धितत्व इस कदर छा जाता है कि उसके हृदय–तत्व को पूर्ण–रूपेणा प्रतिफलित होने के अवसर अत्यल्प मात्रा में ही और वे भी स्वगत कथनों के रूप में ही लक्षित होते हैं। हृदयतत्व की अनुपस्थिति में पश्चात्ताप की कोई संभावना ही नहीं रहती है, लेकिन सुखदा में नारी सहज वह हृदय–तत्व तो वर्तमान है, परन्तु बुद्धितत्व को मोटी–मोटी परतों के नीचे दबा पड़ा, जो तब अभिव्यक्ति पाता है, जब वह पति–गृह को त्यागकर मायके चली आती है और क्रोध के ठंडे पड़ने पर विचारती है '' विनम्रता एक बहुत बड़ा बल है, यह तो अब भुगत कर जानती हुँ जबकि मेरे हाथ कुछ नहीं रहा। सब बीत गया है और जीवन की बाती एकदम लुट गई है।''[1]

1. '' सुखदा '' – जैनेन्द्र कुमार, पृ.सं. 68

2. '' सुखदा '' – जैनेन्द्र कुमार, पृ.सं. 83

विनम्रता की ही भाँति सहृदयतापूर्ण साधिकार स्वामित्व में रहना और पूर्णतः समर्पित हो जाना भी हृदय–तत्व के ही अंष है, लेकिन दुर्भाग्यवष सुखदा कान्त के द्वारा न आदेषित ही हो पाती है, न ही समर्पित, जिसका दुःख अनभिव्यक्त वेदना सी बनकर उसके हृदय को सतत कचोटता रहता है।

स्त्री को राह देना उन्हें न समझना है। गति वह उतनी नहीं चाहती जितनी स्वीकृति चाहती है। स्वीकृति में दूसरे का अपने पर स्वत्व, शायद स्वामित्व भी चाहती है। वह न आकर पुरूष की ओर से निपट अनुमति आती है तो उस पर स्त्री का क्षोम सीमा लांघ जाता है।''[2] एक नारी द्वारा अपेक्षित इस, स्वामी द्वारा शासित होने की भावना की पृष्ठ भूमि में उसकी दासीत्व–भावना नहीं, प्रत्युत सर्व–समर्पिता होने की प्रेयतीत्व–भावना प्रतिकृत होती है और यह समर्पण अथवा शरणागति की भावना भारतीय नारी के संदर्भ में उसके सुखद दांपत्य जीवन हेतु अनिवार्य है। इस तथ्य के समर्थन में यदि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास '' चारू–चन्द्रलेखा '' की विष्णु–प्रिया की उक्ति को उध्रित किया जाय तो अनुचित न होगा। विष्णुप्रिया का कथन है '' स्त्री शरीर के बत्तीस लक्षण महनीय है, परन्तु उसके चित्त का तेंतीसवाँ लक्षण उसे अभिश्रुत कर देता है। यह तेंतीसवाँ लक्षण है – पूर्ण शरणागति अकुण्ठ आत्म–निवेदन, अविचल प्रपत्तिनिष्ठा। पतिवृत धर्म और कुछ नहीं बेटी। पूर्ण शरणागति का दृंढ़ सोपान मात्र है।''[1] लेकिन ध्यातव्य है कि यह समर्पण की भावना नारी प्रवृत्ती में जितनी सहज होती है, उतनी ही सहजता के साथ वह प्रत्येक नारी में अभिव्यक्ति नहीं पाती है, क्योंकि इस समर्पण–भावाभिव्यक्ति का आधार प्ररूष–प्रवृत्ती भी है। नैसर्गिक तथ्य यह है कि विरोधी तत्वों में द्वन्द्व की भाँति आकर्षण भी अत्यंत सहज है। अतः किसी कोमल–प्रवृत्ती वाले पुरूष के प्रति नारी का आकर्षण अपेक्षाकृत कम ही होता है। सुखदा में बाहरी तौर पर '' एग्रेशन '' अधिक लक्षित होता है, परन्तु आंतरिक रूप में उसका नारी हृदय स्वंय पर किसी पुरूष के साधिकार शासन की ही अपेक्षा करता रहता है।

डॉ. रघुनाथ सरन झलानी का मत है कि सुखदा में '' पति की पुरूषत्वहीन, कोमल–स्निग्ध, सद्भावपूर्ण प्रकृति उसमें करूणा तो पैदा करती है, लेकिन सुखदा जैसी नारी में प्रेम और समर्पण पैदा करने के लिए '' एग्रेषन '' बिल्कुल नहीं है। ''[2] एक नारी द्वारा अपेक्षित इस स्वामी द्वारा शासित होने की भावना की पृष्ठ भूमि में उसकी दायीत्व–भावना नहीं, प्रत्युत सर्व–समर्पिता होने की प्रेययीत्व–भावना प्रतिकृत होती है और यह समर्पण अथवा शरणागति की भावना भारतीय नारी के

www.ignited.in

संदर्भ में उसके सुखद दांपत्य जीवन हेतु अनिवार्य है। इस तथ्य के समर्थन में यदि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास '' चारू–चन्द्रलेखा '' की विष्णु–प्रिया की उक्ति को उध्रित किया जाय तो अनुचित न होगा। विष्णुप्रिया का कथन है '' स्त्री शरीर के बत्तीस लक्षण महनीय है, परन्तु उसके परन्तु उसके चित्त का तेतीसवाँ लक्षण उसे अभिश्रूत कर देता है। यह तेंतीसवाँ लक्षण है–पूर्ण शरणागति अकुण्ठ आत्म–निवेदन, अविचल प्रपत्तिनिष्ठा। पतिवृत धर्म और कुछ नहीं बेटी पूर्ण शरणागति का दृढ़ सोपान मात्र है।'' [2] लेकिन ध्यातत्व है कि यह समर्पण की भावना नारी प्रवृत्ती में जितनी सहज होती है, उतनी ही सहजता के साथ वह प्रत्येक नारी में अभिव्यक्ति नहीं पाती है, क्योंकि इस मर्पण–भावाभिव्यक्ति का आधार पुरूष–प्रवृत्ती भी है। नैसर्गिक तथ्य यह है कि विरोधी तत्वों में द्वन्द्व की भाँति आकर्षण भी अत्यंत सहज है। अतः किसी कोमल–प्रवृत्तीवाले पुरूष के प्रति नारी का आकर्षण अपेक्षाकृत कम ही होता है। सुखदा में बाहरी तौर पर '' एग्रेषन '' अधिक लक्षित होता है, परन्तु आंतरिक रूप में उसका नारी ह्रदय स्वंय पर किसी पुरूष के साधिकार शासन की ही अपेक्षा करता रहता है। डॉ. रघुनाथ सरन झालानी का मत है कि सुखदा में '' पति की पुरूषत्वहीन, कोमल–स्निग्ध, सद्भावपूर्ण प्रकृति उसमें करूणा तो पैदा करती है, लेकिन सुखदा जैसी नारी में प्रेम और समर्पण पैदा करने के लिए '' एग्रेषन '' बिल्कुल नहीं है।''

जीवन के आखरी क्षण जब सुखदा के लिए राज यक्ष्मा के रूप में कतई दुःखद बन जाते हैं, तब भी उसका अहम् परास्त नहीं होता इसीलिए अंतर्द्वन्द्व की व्यथा की प्ररण–षाख्या पर भी ढोते हुए वह विघारती है '' ऊपर तपती घाम, नीचे जलता बालु, चारों ओर विजनता लौटने तक का कोई उपाय नहीं। दम टूटकर कब साथ छोड़ता है, यही एक बात है।'' [2] आषासिता होने की अतृप्ति और अनियंत्रित अहम् की भीषणतम आंतरिक टकराहट में पड़कर सुखदा का जीवन चूर–चूर हो जाता है। डॉ. बिजली प्रभा प्रकाष का मत है कि '' सूखदा का समस्त वातावरण नैराष्य और कुंठा से आक्रान्त है। इदम् और अहम् का अंतर्द्वन्द्व है। अहं की समस्या है।''[1]

1. '' सुखदा '' जैनेन्द्र कुमार, पृ.सं. 103

2. –– वही –– पृ.सं. 7

जैनेन्द्र कुमार द्वारा सन् 1953 ई. में प्रणीत उपन्यास '' व्यतीत '' पुरूषपात्र प्रधान होते हुए भी नारी के संदर्भ में उनकी कतिपय विलक्षण धारणाओं की पुष्टी करता है। इन धारणाओं में पति और पत्नि के दाम्पत्येतर संबंधों की अनिवार्यता भी एक है, जो किन्हीं विषेष संदर्भों में पुरूष और नारी के मानसिक ग्रंथियों को खोलने अथवा उनके भौतिक जीवन में जमे हुए बर्फीलेपन को पिघलाने में सफल ही नहीं होती, प्रत्युत उन्हीं संबंधों के कारण व्यक्ति का जीवन सफलता और सार्थकता को प्राप्त करता है। ध्यातत्व है कि ऐसे संबंधों के संदर्भों में जब एक नारी स्वंय को किसी के साथ पत्नि के रूप में जोड़ चुकी है, फिर भी उसे अन्य पुरूष के साथ, जो उसका पूर्व प्रेमी अथवा पति का मित्र हो, संबंध स्थापित करने के लिए विवष होना पड़ा था घटनाक्रम में ऐसी परिस्थितियाँ विनिर्मित हों, तब उस नारी के लिए अंतर्द्वन्द्व से जूझना अनिवार्य हो जाता है। कहना न होगा कि ऐसे नारी पात्रों का अंतर्द्वन्द्व विषेषतः उनके पत्नित्व और प्रेयसीत्व व्यक्तित्वों में छिड़ा रहता है। नारी पात्र के ये दोनों व्यक्तित्व विवच्य विषय के अंतर्गत क्रमषः मस्तिष्क और मन में संबंध होकर संघर्ष को रूपायित करते हैं। '' पत्नित्व '' का मस्तिष्क से संबंध होने का कारण सामाजिक परम्पराओं द्वारा ही पत्नित्व का प्रमाणित होना कहा जा सकता है और दाम्पत्य संबंध को प्रामाणिक सिद्ध करने वाले ये नियम और परम्परायें विकसित बुद्धि अथवा मस्तिष्क की ही देन है। विवाह के संदर्भ में पष्चिमी समाज की तुलना में हमारे समाज में विद्यमान परिस्थितियाँ और परम्पराएँ कुछ ऐसी जटिल है कि अधिकांष संदर्भों में नारी की मानसिकता समझोतापरक बनी चली आ रही है लेकिन इस मानसिकता में परिवर्तन के लक्षण संप्रति समाज और साहित्य में पिछले एक–दो दषकों से ही लक्षित हो रहे हैं। इन तथ्यों से ज्ञात होता है कि पत्नीत्व का पद पुरूष प्रधान समाज में बौद्धिकता का प्रती बन गया है। प्रेयसीत्व का संबंध मन अथवा ह्रदय से स्थापित करने का मुख्य कारण प्रेयसीत्व की स्थिति में विद्यमान समर्पन, त्याग, परोपकार सुधार के निस्वार्थ उपक्रम जैसे नारी सहज मानवीय गुणों की प्रधानता है। इन्हीं गुणों के कारण नारी कभी देवी के रूप में पूजी जाती है, परन्तु पत्नित्व का पद प्राप्त हो जाने के उपरान्त यही नारी अपने उन महान गुणों को पति से हटकर किसी दूसरे पुरूष के लिए क्रियान्वित नहीं कर सकती है, चाहे ऐसे करने की प्रबलतम इच्छा उसमें जागृत ही क्यों न हो। पत्नित्व और प्रेयसीत्व के रूप में जब नारी के मस्तिष्क और मन में द्वन्द्व छिड़ जाता है और यदि उस द्वन्द्व में प्रेयसीत्व अर्थात् ह्रदय–तत्व की विजय होती है, तो परिणाम वही होता है, जो जैनेन्द्र के उपन्यास '' व्यतीत '' की '' अनिता '' के पात्र में लक्षित होता है। यद्यपि अनिता के पात्र–चित्रण में यह अंतर्द्वन्द्व विस्तृत रूप में वर्णित नहीं है, फिर भी उसके अस्तित्व की आभा अनिता के शब्दों और जयंत के साथ किये गये उसके व्यवहार में लक्षित होता है।

उपन्यास '' व्यतीत '' में इस बात का कहीं उल्लेख तक नहीं है कि आखिर अनिता और जयंत का प्रेम क्यों विफल है। दूसरी ओर डॉ. पुरी से विवाह के उपरान्त अनिता में विवाह पूर्व प्रेम के प्रति कोई कुंठा या उदासी भी नहीं पड़ता। पत्नित्व के पद से संतुष्ट अनिता के इस व्यवहार को बौद्धिकता के प्रति उसका रूझान माना जा सकता है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि पूर्व प्रेमी के लिए उसका ह्रदय–कोष पूर्णतः रिक्त हो गया। विवाह के उपरान्त भी पति के साथ मिलकर जयंत के पास जाना, युद्ध में जयंत के घायल होने पर उसकी सेवा–षुश्रूषा करना उसके ह्रदय–तत्व को साकार करते हैं। परन्तु जब अनिता को इस बात का आभास मिलता है कि विवाह के उपरान्त भी जयंत सुखी नहीं है, साथ–ही–साथ उसके भौतिक व्यक्तित्व के बर्फीलेपन से चन्द्री भी त्रस्त है, तब अनिता में दो कारणों से मन और मस्तिष्क का द्वन्द्व उठ खड़ा होता है, यथा प्रथमतः वह विचारती है कि उसी की भाँति उसका पूर्व प्रेमी जयंत भी विवाह कर सुखी जीवन बिताये, परन्तु ऐसा नहीं होता है, क्योंकि जैनेन्द्रीयता के अनुसार नारी–देह के प्रति जयंत की मानसिक ग्रंथि पूर्णतः खुल नहीं पाती है जो अनिता में निराषा और क्रोध का कारण बनता है। दूसरा कारण यह कि अनिता जिस जयंत को पाने में असफल हुई है, उसे पाकर भी चन्द्री सुखी नहीं है, जो चन्द्री में भी दुःख का कारण बनता है। इस प्रकार इच्छा की अपर्णता से उत्पन्न कुण्ठा से परिचित होने के कारण चन्द्री के प्रति अनिता को संवेदना अंतर्द्वन्द्व और रोषपूर्ण व्यवहार के रूप में अभिव्यक्त होकर पुनःसमुचित परिणाम की अपेक्षा में सर्वस्व समर्पण में पर्यवतित होती है। अपने उस अंतर्द्वन्द्व और आक्रोष की अभिव्यक्ति में वह कहती है '' बस आज का दिन है और वह खुद दे गए हैं। चन्द्री मुझे मिली भी। वह रोती थी। मैं पूछती हूँ तुम क्या चाहते हो निर्दयी, राषत,

तुम अंधे हो ? आँखों से देखते नहीं ? मैं व्याहता हूँ फिर क्या चाहते हो ? तुम नहीं चाहते अनिता को। तुम पापिष्ठा को चाहते हो।'' [1] इसके उपरान्त दूसरे ही दिन अनिता को अपने कर्तव्य का मान इस रूप में होता है।

1. '' व्यतीत '' – जैनेन्द्र कुमार – पृ.सं. 64

कि वह जयंत के सम्मुख अपने सर्वस्व का समर्पण कर चन्द्री के प्रति जयंत के मन में जमे ठंडेपन को दूर ही नहीं कर सकती है, प्रत्युत वह स्वंय के अंतर्द्वन्द्व से भी मुक्ति पा सकती है इसलिए वह जयंत से कहती है। '' जयंत रात की बात भूल जाना। मैं सुध में न थी। अब सुध में हूँ। कहती हूँ मैं यह सामने हूँ। मुझको तुम ले सकते हो। समूची को जिस विध चाहो ले सकते हो। स्त्री सदा यह नहीं कहती। लेकिन मैं सुध रखकर कह रही हूँ। जयंत स्त्री देह को तुमने नहीं जाना है तो यह मैं हूँ व्याहता हूँ पति की भक्ति करती हूँ बहती हूँ किनारा लेकर तुम कहीं नहीं जा सकोगे. . अपने पुरूषत्व को छुड़ाकर तुम मुझसे जा नहीं सकोगे . .।'' [1]

अनिता के इस सर्वस्व समर्पण को पूर्व–प्रमी के साथ अपनी अतृप्त इच्छा पूरी करने के लिए अनिता द्वारा उठाये गये गुप्त अवसरवादी कदम के रूप में अथवा जैनेन्द्रीयता प्रेमी पाठकों की संवेदना को बलात हस्तगत करने के लिए की गयी नारी प्रवंचना के रूप में कदापि देखा नहीं जा सकता है, क्योंकि यदि अनिता की इच्छा नैसर्गिक बुभुक्षा तृप्ति मात्र ही होती, तो वह पति द्वारा दी गयी स्वेच्छा का उपयोग बहुत पहले ही कर चुकी होती, इतना ही नहीं यदि अनिता में ऐसी आत्म–केन्द्रीय सुखापेक्षिता होती, तो उसमें शायद ही चन्द्री के प्रति कोई संवेदना जागृत होती। अतः अनिता के सर्वस्व समर्पण को पृष्ठ–भूमि में अंतर्द्वन्द्व से मुक्ति की प्रेरणा ही क्रियाषील है। इस संदर्भ में स्वंय लेखक जैनेन्द्र के विचार अवष्य द्रष्टव्य है, यथा वे कहते हैं '' प्रेम प्रोटेस्ट के साथ है, समर्पण विरोध के साथ है। जयंत अपने संयम में दृढ़ रहता है।

1. '' व्यतीत '' – जैनेन्द्र कुमार – पृ.सं. 66–67

अनिता अनुभव करती है कि इसके पीछे अहंकार है, अभिमान है और वह अभिमान उसे सामान्य व्यक्ति के रूप में व्यवहार करने ही नहीं देता। चन्द्री के प्रति पति होकर भी उसका यह ठंडापन, यह अलगपन उसे अक्षमणीय मालूम होता है इसलिए वह बेहद झुंझुलाहट में उस तरह का व्यवहार करती है जो परस्पर विरूद्ध मालूम होता है। अपनी ओर से पहले उल्लंध्य आचरण करती है। नोचती–खसोटती है, अपषब्द कहती है। बाद में वही अपने को पूरी तरह, अपने पूरे अर्पण के लिए अद्यत होती है। ये सब आचरण किसी ओर से भी विषय–वासना–मूलक कहा जाय वह नहीं है बल्कि दोनों के भीतर जो गम्भीर सहानुभूतिपरक द्वन्द्व चल रहा है उसका अभिव्यंजन है।''[1] इस प्रकार अनिता के संदर्भ में प्रेयतीत्व के प्रतीक के माध्यम मस्तिष्क पर ह्रदय–तत्व का विजय उद्घोषित हो चुका है।

मानव मस्तिष्क की सबसे बड़ी विषेषता उसकी विजयापेक्षी भावना ही है। चाहे संदर्भ, साधन और मार्ग जो भी हों, यथा संभव व्यक्ति विजय प्राप्ति हेतु प्रथमतः न्यायपूर्ण, तर्क–संगत और सर्वमान्य मार्ग को ही अपनाने की चेष्टा करता है परन्तु अपने इन उपक्रमों के परिणाम में प्रतिकूलता की संभावना का मान होते ही व्यक्ति या तो विद्रोह कर बैठता है या समझौता, विद्रोह और समझौता को निर्धारित करने वाले अंष व्यक्तित्व–भिन्नता पर निर्भर करते हैं। नारी जीवन से संबंद्ध अनेक आधुनिक समस्याओं में प्रेम और जीवन–साथी को चुनने की भी समस्या एक है, जो अपने मूल रूप में कुछ पुरानी प्रतीत होते हुए भी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में अपने नवीनतम रूप में प्रस्तुत और विष्लेषित हुई है। '' जैनेन्द्र की सब से बड़ी विषेषता यह है कि उनके उपन्यासों में नारी समस्या अत्याधिक आधुनिक है। घुटन और कुण्ठाओं से परे, सम्प्रतिकाल तक जो प्रष्न नारी के लिए गम्भीर रहे हैं, उनको बदलते हुए मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में अभिनव रूप से रखने का प्रयत्न किया गया है। यहाँ आधुनिकता का विधान नवीनता के संदर्भों में किया गया है।'' [1] जो उनके उपन्यास '' व्यतीत '' के एक और प्रमुख नारी पात्र '' चन्द्र '' के अंतर्द्वन्द्व के चित्रण में लक्षित होता है। आदिम युग से अर्वाचीन युग तक नारी सर्वदा छली जाती रही और संप्रति समाज में जहाँ समानाधिकारों का ढिंढोरा बड़े जोर–षारे के साथ पिट रहा है, वह भी इस तथ्य के संदर्भ में अपवाद नहीं है, यह बात चन्द्री के चरित्र निर्माण के दौरान सिद्व हो चुकी है। चन्द्री के व्यक्तित्व की विलक्षणता के संदर्भ में कहा जा सकता है कि '' चन्द्री के व्यक्तित्व अंकन में अनेक मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताएँ हैं।

उसमें चुनौती देने का सामर्थ्य है, अपमानित होने पर सत्कार करने की शक्ति है, उसमें दर्प तथा अहंकार है लेकिन साथ–ही–साथ अनपेक्षित भाव से सेवा करते रहना भी उसका स्वभाव है। जयन्त की अवहेलना पाकर भी उसकी प्रसन्नता और प्रभुत्ता में अन्तर न आया।''[1]

उपन्यास के घटना क्रम में विलम्ब से उपस्थित होकर भी चंन्द्री सभी पात्रों को अपने व्यक्तित्व की प्रभावपूर्णता के दायरे में अनायास ही खींच लेती है, फिर भी उपन्यास के पुरूष पात्र कुमार और जयंत के द्वारा उसके प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार ही होता है।

1. जैनेन्द्र के उपन्यासों के नारी–चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल–बिझली प्रभा–प्रकाष – पृ.सं. 185–186

2. हिन्दी उपन्यास और नारी समस्याएँ – डॉ. स्वर्णकान्ता तलवार – पृ.सं. 106

विलायत जाने के लिए चन्द्री को भड़काने वाला कुमार अपनी पत्नि से डर कर चन्द्री को जयंत के हवाले करते हुए उसके साथ दो दिन के रोमान्स का नाटक करने के लिए कहता है। दूसरी ओर कुमार को निष्चित् करने तथा अपने विवाह के संदर्भ में अनिता को आष्वस्थ करने के लिए जयंत, चन्द्री के साथ छलपूर्ण व्यवहार करता है, जिससे अनाभिज्ञ चन्द्री, जयंत के प्रेम को सच मान बैठती है, जो अनादि से पुरूष के प्रति विष्वास जताने वाली सहज नारी–प्रवृत्ति का परिचायक है। चन्द्री और जयंत की मधुचंदा–यात्रा विफलता में परिणत होकर चन्द्री को विष्वास दिला देती है कि उसके प्रति जयंत का प्रेम कृत्रिम ही है। ऐसी स्थिति में किसी अन्य नारी की प्रतिक्रिया कुछ और ही हो सकती है, परन्तु अपने व्यक्तित्व में ह्रदय–तत्व के प्राधान्य को बनाये रखने वाली चन्द्री अपने मानसिक संतुलन को बिगड़ने नहीं देती। वह पूर्ण संयम के साथ प्रतिक्षा करती है कि जयंत में जीवन के प्रति कोई स्वीकारात्मक परिवर्तन घटित हो, परन्तु उसकी प्रतिक्षा और उसके सारे उपक्रम विफल हो जाते हैं। इस स्थिति में उसके ह्रदय–तत्व का संघर्ष उसकी बौद्धिकता के साथ होता है।

यद्यपि इसका विस्तृत वर्णन उपन्यास में नहीं हो पाया है। उपन्यास में चन्द्री कुमार द्वारा उपेक्षिता है और जयंत, अनिता से तिरस्कृत। ऐसी स्थिति में इन मुं समझौता हो सकता था, परन्तु जीवन के प्रति यथार्थ परक दृष्टि रखने वाली चन्द्र यह

विचारती है कि जब वह अपने नारी सहज मार्ग पर कदम बढ़ाकर वांछित फल प्राप्त नहीं कर सकी, तब भावुकता के भँवर में चक्कर काटने से कोई लाभ नहीं।

1. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास – रघुनाथ सरन झालानी – पृ.सं. 95

यदि मस्तिष्क की भौतिकवादी प्रेरणा से ही सही, जीवन में समझौते के माध्यम सुख पाया जा सकता है, तो वही जीवन की सार्थकता है। यही विचारक चन्द्री अपने पूर्व प्रेमी कुमार, जो अब विधुर बन चुका है, को अपना लेती है। इस प्रकार चन्द्री के अंतर्द्वन्द्व का समापन मस्तिष्क के विजय में होता है।

सन् 1961 ई. में प्रकाषित मोहन राकेष का उपन्यास '' अंधेरे बन्द कमरे '' अपने पात्र चित्रण, कथा विन्यास, मानसिक क्रिया–प्रतिक्रिया, महानगरीय संस्कृति से प्रभावित जीवन–षैली आदि की दृष्टि से एक विलक्षण–कृति ही है। यद्यपि कुछ आलोचकों ने इस आंषिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कोटि में रखना समोचीन माना है, तो दूसरी ओर स्वंय लेखक भी इस उपन्यास के उद्देष्य के संदर्भ में कोई स्पष्ट वक्तव्य दे नहीं सके हैं और यह तथ्य उपन्यास में दी गई भूमिका से स्पष्ट हो जाता है फिर भी इस बात का स्पष्ट संकेत दे ही दिया गया है कि उपन्यास के प्रमुख पात्र हरबंस और नीलिमा अपने–अपने अंतर्द्वन्द्वों से त्रस्त हैं। पाठक को इस बात का भी अनायास बोध हो जाता है कि हरबंष और नीलिमा के दांपत्य जीवन में वैचारिक और अनुभूति–संप्रेषण के स्तर पर कहीं कोई गाँठ पड़ी हुई है, जिसे जब भी वे दोनों खोलने का उपक्रम करते हैं, तब वह गाँठ और भी कसती और उलझती जाती है। इस दंपत्ति के अंतर्द्वन्द्व में निहित कारणों में उक्त कारण ही अत्यंत प्रमुख है। लेकिन यहाँ हमारा विवेध्य विषय नीलिमा के आंतरिक संघर्ष का विष्लेषण करना है।

दिल्ली के एक महाविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर के रूप में कार्यरत हरबंष जी–जान से चाहकर सावित्री से विवाह करता है। अपनी महत्वाकांक्षाओं और महानगरीय सांस्कृतिक परिवेष के अनुरूप पत्नि के व्यक्तित्व को ढालने के लिए वह उसका नाम बदलकर नीलिमा रख देता है। बार–बार कॉफी हाऊसों में ले जाकर हरबंष नीलिमा को महानगरीय जीवन शैली का बोध कराता है, साथ–ही–साथ जिस चित्र कला में नीलिमा की बिलकुल रूचि नहीं है, उसमें आगे बढ़ने के लिए उस पर जोर भी डालता रहता है, जो स्वंय नीलिमा की बातों से ही ज्ञात होता है लेकिन पति को निराष न करने के विचार से नीलिमा चित्रकला को लेकर अपने प्रयत्न जारी रखती है। पति की संतुष्टी हेतु अनिच्छा का भार–वहन करने की भारतीय पत्नि की मानसिकता यहाँ नीलिमा में लक्षित होती है। वह पति के प्रति जैसे प्रेम और समर्पण की भावना रखती है, उत्तर में उसको वैसा ही अपेक्षा करना नितांत न्याय संगत है,. . . और हरबंष के लंदन प्रवास के दौरान लिखे गये पत्रों में वह पत्नि के इस विचार का भी इस प्रकार उल्लेख करता है '' तुमने लिखा है कि प्रेम एक तरह की मान्यता है जो हम एक–दूसरे को देते हैं।''[1] पति के इच्छानुसार अपने व्यक्तित्व में पाष्चात्य संस्कारों को विकसित करने वाली नीलिमा में पति के प्रति उसके लंदन प्रस्थान के बाद भी वही आत्मीयता और आस्था बनी रहती है तथा पति की अनुपस्थिति का एहसास उसे प्रतिफल होता ही रहता है।

हरबंष के जाने के बाद मुझे यहाँ कोई भी ऐसा व्यक्ति नजर नहीं आता जो मुझे ठीक सलाह दे सके।जब हरबंष यहाँ था, तो लगता था कि यहाँ बहुत–से लोग हैं जो अपने हैं। उसके जाने के बाद सभी लोग बहुत पराये–से हो गये हैं।''[2]

1. '' अंधेरे बंद कमरे '' – मोहन राकेष, पृ.सं. 97

2. – – वही – – पृ.सं. 84

नीलिमा के ये उक्त कथन उसकी मानसिकता के हृदय पक्ष की झलक प्रस्तुत करते हैं। इसी संदर्भ में पाष्चात्य संस्कारों के माध्यम नीलिमा में उन्मीलित भौतिकवादी प्रवृत्ति की ओर संकेत कर देना भी अत्यंत आवष्यक है। नीलिमा कथावाचक मधुसूदन से कहती है। '' तुम्हें मेरा सिगरेट पीना बुरा तो नहीं लग रहा ? बुरा लग रहा हो, तो बुझा दूँ! मैं घर में कभी–कभार एकाथ सिगरेट पी लेती हूँ। हरबंष ने मेरी आदतें बहुत बिगाड़ रखी हैं।''[1] महानगरीय जीवन–षैली के आकर्षण में पड़ा हरबंष जिस हड़बड़ी में पत्नि की कथापलट कर देता है, वह उनके दांपत्य जीवन के लिए बहुत भारी सिद्ध होता है।

हरबंश और नीलिमा के दांपत्य जीवन का एक–एक दिन ऐसे वर्णित हुआ है, मानो अ बवह विघटन की खाई के सिरे पर खड़ा है और किसी भी क्षण उसका पतन निष्चित् है। पति–पत्नि के दिन–दिन को यह खट–पट ही नीलिमा में द्वन्द्व के बीज खो देती है। आधुनिक औपन्यासिक–विधा में पुरूष और स्त्री के मनोविष्लेषणार्थ पति–पत्नि के संबंधों के बनने और विघटित होने को ही आधारभूत घटना के रूप में स्वीकारा गया है। यह नया प्रयोग अपेक्षाकृत कहीं अधिक वास्तविक तथ्यों को उजागर करने में सफल सिद्ध प्रतीत हुआ है।

1. '' अंधेरे बन्द कमरे '' – मोहन राकेष – पृ. सं. 47

क्योंकि दांपत्य जीवन के विघटित हो जाने के उपरांत ही पति और पत्नि को एक के लिए दूसरे के महत्व को पहचानने का अवसर मिलता है, तात्पर्य यह नहीं कि पारस्परिक महत्व की पहचान हेतु हर पति–पत्नि में विघटन ही हो जाय। उक्त तथ्य को हम उपन्यास '' आपका बंटी '' और '' शेष यात्रा '' में प्रामाणिक रूप में देख सकते हैं। डॉ. उमा शुल्क का मत भी कुछ इसी प्रकार का है। वे कहती है '' मुझे यकीन है कि नारी–पुरूष संबंध के बनते–बिगड़ते रूप से ही नारी का निजत्व उभरकर आयेगा।''[1] उपन्यास के समापन बिन्दु पर हरबंष के पास नीलिमा की वापसी उक्त तथ्य की पुष्टी कर देती है।

दांपत्य–जीवन से उब कर हरबंष जब अपनी प्रतिभा के विकास के बहाने लंदन चला जाता है और यात्रा के दौरा तथा लंदन से नीलिमा के नाम जो पत्र प्रेषित करता है तब नीलिमा पुनः इस दुविधा में पड़ जाती है कि वास्तव में उसके भरतनाट्यम् सीखने के लिए मैसूर जाना है अथवा पति की उदासी दूर करने के लिए लंदन प्रस्तान करना है ? उसका पत्नि हृदय उसे लंदन जाने के लिए प्रेरित करता है, तो उसकी तर्क–बुद्धि उसे अपने व्यक्तित्व विकास के लिए नृत्य सीखने की प्रेरणा देती है और इस संघर्ष में सामयिक तौर पर तर्क बुद्धि ही सफल होती है।

डेढ़ वर्ष बाद नीलिमा जब लंदन जाती है, तो उसे घर की आर्थिक तंगी दूर करने के लिए बेबी सिटिंग करनी पड़ती है,

जो उसे कतई पसंद नहीं है। लंदन में भी पति–पत्नि में अक्सर तू–तू मैं–मैं हो जाया करती है।

1. " भारतीय नारी–अस्मित की पहचान " – डॉ. उमाषुल्क, पृ.सं. 33

एक दिन नीलिमा अचानक यह निर्णय कर लेती है कि वह उमादत्त के सांस्कृतिक दल के साथ यूरोप का दौरा करेगो, जो हरबंष को बिल्कुल पसंद नहीं है।

इस पति–पत्नि के साथ अक्सर यही त्रासदी होती रहती है कि वे एक दूसरे की भावनाओं विचारों और व्यक्तित्वों से परिचित होते हुए भी स्थिति विषेष के अनुरूप न स्वंय को अड्जेस्ट ही कर पाते हैं, न ही पारस्परिक सद्भावना रखते हैं। दोनों का मत यही है कि दूसरा उसे अपने व्यक्तित्व की धाक से घुटने टेकने पर मजबूर कर रहा है।

लंदन से दिल्ली लौट आने के उपरांत भी हरबंष और नीलिमा के दांपत्य जीवन में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं आ पाता उल्टे हरबंष के रूखेपन के कारण नीलिमा दिनों–दिन कठोर होती जाती है। जब दिल्ली–कला–निकेतवाले नीलिमा का नृत्य प्रदर्षन आयोजित करना चाहते हैं, तो वह प्रस्ताव हरबंष को पसंद नहीं आता। उसका विचार यह है कि अभी नीलिमा कलानिष्पात नहीं है, लेकिन नीलिमा अपनी क्षमता के प्रति आवष्यकता से कहीं अधिक विष्वस्थ होकर नृत्य प्रदर्षन के लिए तैयार हो जाती है। उसके इस व्यवहार में नृत्य के प्रति उसकी गहन रूचि की अपेक्षा पुरूषाभिमान की परास्त करने की तर्क–बुद्धि–प्राधान्य प्रतिद्वन्दिता की भावना कहीं अधिक प्रतिबिंबित होती है, साथ–ही–साथ नृत्य प्रदर्षन की सफलता के प्रति मन की गहराईयों में कुनमुनाती शंका को दबाकर अनायास सफलता पा जाने की तार्किकता की प्रेरणा से वह नृत्य प्रदर्षन के आयोजन से संबंध लोगों को बड़ी तड़क–भड़क की दावत भी देती है लेकिन नृत्य प्रदर्षन के दिन पति से वह इस कदर झगड़ बैठती है।

1. अंधेरे बन्द कमरे–मोहन राकेष – पृ.सं. 152

कि मानसिक स्तर पर उसका संपूर्ण विष्वास ध्वस्त हो जाता है और नृत्य प्रदर्षन बिल्कुल विफल सिद्ध होता है। नृत्य के दौरान नीलिमा का आंतरिक द्वन्द्व उसे पूरी तरह बिखेरकर रख देता है। कथा–वाचक मधुसूदन के शब्दों में " सारा समय उसे देखकर मुझे लग रहा था जैसे वह कोई बात सोच रही हो, बहुत दूर की बात, जो बार–बार मन से परे धकेलकर भी वहाँ लौट आती हो और उसे अन्दर–ही–अन्दर कुरेदने लगती हो। यह बात क्या थी ? क्या उस बात का खाली कुरूतियों के साथ कुछ संबंध था, या हरबंष के और उसके अपने घरेलू जीवन के साथ, या इस अहसास के साथ कि चौंतीस साल की उम्र में उसे जो यह अवसर मिला है, अगर वह उसका ठीक से उपयोग न कर सकी तो. . .? जब यह अन्तर्द्वन्द्व बहुत बढ़ जाता था, तो उसके पैरों की गति तेज हो जाती थी।"[1]

नृत्य प्रदर्षन के उपरान्त नीलिमा इस निर्णय पर पहुँच जाती है कि उसकी विफलता का पूरा दायित्व पति हरबंष ही है। सार्वजनिक अपमान के इस विषैले घूँट को निगलना नीलिमा के लिए असंभव–सा हो जाता है। वह उसी दिन पति का घर परित्याग कर अपनी माँ के पास चली जाती है। असहनीय मानसिक तनाव और द्वन्द्व से त्रस्त हरबंष भी बेहद अधिक शराब पीकर बीमार पड़ जाता है।

पति–गृह के परित्याग से पूर्व नीलिमा औपन्यासिक नेरेटर के सामने जो वक्तव्य देती है, वह उसके आंतरिक संघर्ष की चरम–सीमा ओर टूटन का परिचायक है।

1. " अंधेरे बन्द कमरे " – मोहन राकेष – पृ. 305

नीलिमा जब–जब पति हरबंष से सद्भावना की अपेक्षा करती रही, तब–तब उसे अपमान और अविष्वास ही मिलत रहे। वह कदापि यह नहीं चाहती थी कि वह सर्वदा पति की भौतिक आवष्यकताओं की पूर्ति करने का साधन मात्र हो।

हरबंष के लंदन प्रवास को लेकर नीलिमा ने कभी कोई शंका व्यक्त नहीं की, जबकि उसके पैरिस प्रवास को लेकर हरबंष नित्य शंकित बना रहा और ऐसे विष्वास को सहना किसी भी नारी के लिए अत्यंत कठिन है। नीलिमा अनुभव करती है कि उसके दांपत्य जीवन में जिस चीज की सर्वदा कमी रही, वह यही सद्भावनापूर्ण विष्वास है और इस विष्वास के अभाव में सुखमय दाम्पत्य की कल्पना तक नहीं की जा सकती है। नीलिमा मानती है कि सफल दांपत्य का अर्थ मात्र बच्चे पैदा करना नहीं है। " सैक्स " जीवन की एक अनिवार्यता हो सकती है, परन्तु "सैक्स" ही जीवन नहीं है और नीलिमा की समस्त अपेक्षायें हमेषा ठोकरे ही खाती रही। नीलिमा में एक बार सनातन–पत्नित्व की भावना भी लक्षित होती है। वह यह विचारती है कि उसी के कारण पति हरबंष सुखी नहीं रह पा रहा है। इसलिए यदि उससे वह अपना संबंध–विच्छेद कर ले, तो शायद पति सुखी रह पायेगा। लेकिन नीलिमा ऐसा संबंध विच्छेद भी नहीं कर पाती है, क्योंकि बार–बार किय जाने वाले हरवंश के भाउक्तापूर्ण व्यवहार नीलिमा को अपना निर्णय बदल लेने के लिए विवष करते हैं। नीलिमा की इस उक्त वैचारिकता और मानसिकता में व्यवहारिक संतुलन कदापि स्थापित नहीं हो पाता है। कहना न होगा कि नीलिमा के जीवन के दोनों स्तरों से संबंध अव्यवहारिकता ही उसके आंतरिक संघर्ष का मूल कारण है। लेकिन ध्यातव्य है कि पति की ऋग्नता और बेटे अरूण के भविष्य को लेकर गहन चिंतन–मनन करने के उपरांत नीलिमा जीवन के प्रति समझौता वादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए हरवंष के पास लौट आती है, कदाचित उसके गहन अंतस् में अपने दांपत्य जीवन के भविष्य को लेकर तब भी कोई आषा की किरण बची ही क्यों न हुई हो।

भावनात्मकता और भौतिकता इन दोनों स्तरों पर प्रेम को उसकी संपूर्णता में प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा का एक कन्या में होना नितांत सहज बात है। जिस इच्छा की आपूर्ति उस कन्या के बाह्य–सौंदर्य तथा उस सौंदर्य के प्रति आकृष्ट होने किसी पुरूष के नारी–सौंदर्य–दृष्टिकोण से जुड़ी जुड़ी हुई है। दैहिक–सौंदर्य के संदर्भ में ध्यातव्य है कि कोई भी स्वं को सुन्दर मान लेने की अपेक्षा दूसरों की दृष्टि में स्वंय को आकर्षक और सुन्दर पाये, जो उसे अपार तुष्टी दे सकती है। इस तथ्य के आधार पर सौंदर्य की परिभाषा, शारीरिक रंग–रूप तथा अवयवों के माप और गठन से संबंध सीमाओं में सिमट जाती है। ऐसी स्थिति में अपनी प्रेमेच्छाओं को जीवन में साकार करने के लिए लालायित कोई कन्या कुरूप अथवा असुन्दर हो, वह उसके लिए एक अभिषाप ही है, क्योंकि अधिकांषतः नारी–सौंदर्य को अवयवों के गठन के मापदंड पर आँकने वाली पुरूष–प्रवृत्ति से दोनों स्तरों के प्रेम की अपेक्षा करना उस कन्या के लिए निराषा और कुंठा का कारण बन सकता है और जब इसके साथ तर्क भी जुड़ जाता है तो उसकी परिणति अंतर्द्वन्द्व में हो सकती है। इसी तथ्य को राजेन्द्र यादव ने अपने एक अन्य उपन्यास " अनदेखे अनजान पुल " का आधार

www.ignited.in

बना–कर एक असुन्दर कन्या की आंतरिक व्यथा की उसकी सुक्ष्मतम प्रतिक्रियाओं के साथ शब्द बद्ध किया है।

उपन्यास की प्रमुख नारी पात्री " विधु " सुन्दरता के संदर्भ में पूर्णतः अपने नाम के विरूद्ध पड़ती है, इसीलिए ही कदाचित वह " निन्नी " के नाम से संबोधित होना पसंद करती है। उसके पिता को कचहरी से होने वाली आमदनी से पारिवारिक सामान्य आवष्यकताओं की आपूर्ति करना बड़ा कठिन हो जाता है। सभी भाई–बहनों में निन्नीकाही असुन्दर होना उसका दुर्भाग्य ही है, जिसका स्पष्ट बोध उसे स्वंय इस प्रकार था कि उसका " रंग काला है, वह असुन्दर नहीं है, उसके होंठ साँवले हैं और मसूड़े जरूरत से ज्यादा लाल हैं और सारे चेहरे पर दाँतों और आँखों के कोयों की सफेदी बड़ी डरावनी लगती है। यह बोध रात–दिन उसके ऊपर सवार रहता और घिनौने तिलचट्टे की तरह अपनी उपस्थिति से उसकी नींद हराम किये रहता।"[1] ऐसी स्थिति में उसके विवाह को लेकर माता पिता द्वारा किये गये प्रयत्नों का विफल होना निन्नी में इस तर्क को स्थाइत्व प्रदान करता है कि " गृहस्थी का सुख उसके लिए नहीं है। उसे सिर्फ पढ़ाई की लाईन में जाना है।"[1] निन्नी का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह भी है कि वह अपनी कुरूपता को जितना अधिक भुला देना चाहती है, उतना ही उसे वह मुहल्लेवालों की दयापूर्ण उक्तियों और सह–छात्रों के व्यंग्य–बाणों से स्मरित हो घायल करता रहता है। अपने प्रति उमड़ते इस व्यंग्य और दया से निन्नी अंतर्मुखी सी हो जाती है और एक आत्म–हीनता की भावना उसके अंतस में जुड़े जमाने लगती है।

1. अनदेखे अनजान पुल – राजेन्द्र यादव – पृ.सं. 23

2. वही – पृ.सं. 22

एक बार एक रिस्तेदार के यहाँ हुए विवाह में निन्नी जाती है, तो वहाँ उसकी एक सहेली संध्या और उसके प्रेमी बैजल के पारस्परिक प्रेमपूर्ण व्यवहार निन्नी को दृष्टि में पड़ जाते हैं। इस संदर्भ में निन्नी अपनी असुन्दरता को कोसकर रह जाती है और बार–बार उसकी तर्क बुद्धि उसे सुझाती है कि वह ऐसे प्रेम को पाने के लिए अयोग्य है। इसी समय अंधेरे में बैजल गलती से निन्नी को ही अपनी प्रेमिका संध्या समझकर उसे आलिंगनबद्ध कर चुंबनों की बौछार कर देता है। इस अप्रत्याषित घटना से निन्नी का भावनात्मक स्थरीय–प्रेम एक भौतिक स्थरीय अनुभूति को प्राप्त कर जाता है, जो उसके अंतस में एक खलबली–सा मचा देता है। वह कभी सोचने लगती है कि गलती का बहाना करते हुए बैजल ने जानबूझकर ही उसका चुम्बन लिया, तो दूसरे ही क्षण यह भी विचारती कि शायद उसे चुम्बन देने का एहसास होते ही बैजल को उबकाई कायी होगी। ऐसे विचारों से उसका मन द्वन्द्व के भँवर में फँस जाता है।

यथा " बहुत बार ऐसा होता है कि पुरूष या नारी निगाहें किसी में ऐसा कुछ पा लेती है, जो उन्हें दूसरे में मिलता ही नहीं। अत्यन्त सुन्दर पत्नि के रहते भी पुरूष किसी दूसरी औरत में आखिर क्या चीज पाता है ? और ऐसी बातें खुद उसकी अपनी जानकारी में हैं तो क्या बैजल के साथ ऐसी सम्भावना नहीं है ? एक बार मिल लेने में क्या हर्ज है ? लेकिन पृष्ठभूमि के संगीत की तरह लगातार दो भावनाओं का द्वन्द्व उसे रोके रहा।"[1] इस अंतर्द्वन्द्व में जब तर्क बुद्धि का पलड़ा भारी पड़ने लगता है, तो निन्नी के मन पर अपनी असुन्दरता को मिटा देने का विचार भूत–सा सवार हो जाता है।

1. अनदेखे अनजान पुल – राजेन्द्र यादव – पृ.सं. 92

तब से वह कई प्रकार के विज्ञापनों के माध्यम अनेक प्रसाधनों की जानकारी प्राप्त करने लगती है। उन्हीं दिनों पड़ोसी तिवारी जी के घर में आये उनके भतीजे सागर से उसका परिचय होता है। चौपड़ खेलते समय सागर अवसर खोज–खोजकर निन्नी का स्पर्ष करता है, जिससे निन्नी की अतृप्त वासना उद्दाम रूप धारण करने लगती है, परिणामतः " हमेषा मन कुछ दुष्ट, कुत्सित और वर्द्धनीय कहने और करने की मचलता रहता छिप–छिपकर चटखारेदार प्रेम और रोमाँस की किताबें पढ़ती, उनके चुम्बनों, आलिंगनों वाले वर्णनों को अनेक बार दहराती और आँखें बन्द करती तो बैजल की गर्म–गर्म साँसें और अंधेरी म्यानी सामने आ जाती।"[1] निन्नी जब अपने लिए सागर से क्रीम खरीद लाने को कहती, तो वह दो टूक शब्दों में उसका अपमान कर देता है और निन्नी का मन टूट–सा जाता है। आत्म ग्लानी की स्थिति में उसका ह्रदय कराह उठता है कि वह जिस सुख को उसकी संपूर्णता में पाना चाह रही है, वह उसके लिए अलभ्य ही है, लेकिन उसकी बुद्धि उसे सांत्वना देती है। कि सागर द्वारा उसके देह को टटोले जाने में कुछ सीमा तक वह उस उलभ्य सुख को पा सक रही है, जिसमें उसके भोलेपन का अभिनय उसका कवच ही बना हुआ है परन्तु पुनः उसका ह्रदय उसके दस व्यवहार को नितांत अनैतिक सिद्ध करने लगता है जिसके कारण वह अपने आंतरिक संघर्ष से मुक्त नहीं हो पाती, यथा " कहीं भीतर हल्की–सी सास्त्वना भी मिलती–देखो, कितने लोगों को मैं धोखा दे सकती हूँ ऊपर का सीधापन कायम रखते हुए भी उन सब अनुभवों को अपने–आप प्राप्त कर सकी हूँ।

1. अनदेखे अनजान पुल – राजेन्द्र यादव – पृ.सं. 102

2. – वही – – पृ.सं. 104

लेकिन अन्तर्तम से उभड़ती परिताप और अपराध–भावना रात–दिन कचोटती रहती यह सब बहुत बुरा ही रहा है यह नहीं होना चाहिये।"[1] लेकिन दैहिक–बुभुक्षापूर्ति की असंभवनीयता का विचार आते ही निन्नी में वही भावना उद्दाम रूप ग्रहण कर जाती और उसकी तुष्टी के लिए निन्नी को अपाय ढूँढ़ने पड़ते। वह सुनती है कि दिल्ली में नुमाइष लगी है और वहाँ की भीड़ भरी बसों में ऐसी धक्का–धक्की होती है कि कोई किसी की परवाह नहीं करता। निन्नी का मस्तिष्क दिल्ली की उस भीड़ के दबाव की अनुभूति पाने के लिए मचल उठता है और वह अपने भाई रम्मी के साथ उसके मित्र दर्षन के यहाँ दिल्ली पहुँच जाती है। आधी रात के समय चित्रकार दर्षन के घर पहुँचने पर निन्नी की तर्क बुद्धि आत्महीनता के रूप में खाये जाने लगती है कि दर्षन तो एक चित्रकार है, जिसकी दुष्टि हमेषा सुन्दरता की खोज में ही लगी रहती होगी और तब वह उसे (निन्नी को) देखेगा, तो शायद उसका मन घृणा से भर जायेगा लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी बुद्धि उसे ढाढस बांधती है कि " सुन्दरता अपने–आप में कुछ नहीं होती, सलीका ही आदमी को सुन्दर बनाता है।"[1] इसीलिए बड़े सबेरे तब से पहले जागकर वह उस भयंकर सर्दी में भी ठंडे पानी से नहा कर तैयार हो जाती है।

भाई रम्मी के किसी साक्षात्कार के लिए चले जाने पर निन्नी देखती है कि दर्षन के कमरे और रसोई की स्थिति बिलकुल अव्यस्थित है, जिससे निन्नी के ह्रदय में दर्षन के प्रति एक सहज संवेदना उमड़ पड़ती है। वह उस पूरी तन्मयता के साथ भोजन बनाने का काम संभालती है और दर्षन भी कई दिनों के

www.ignited.in

बाद स्वादिष्ट भोजन खा पाता है। जब वह पूरी ईमानदारी के साथ निन्नी और उसके द्वारा बनाये गये भोजन की प्रषंसा करता है, तो निन्नी के " भीतर एक बड़ी गहरी तृप्ति की भावना हुई। युग–युग के नारी–संस्कार थे, जो पुरूष को खिलाकर सार्थकता की व्यापक अनुभूति में पुलक उठे थे।"[2] इलाचन्द्र जोषी के " मुक्तिपथ " की सुनन्दा भी अपने प्रेमी राजीव को इसी प्रकार खाना खिलाने में एक असीम तृप्ति की अनुभूति प्राप्त करती है, जो भारतीय समाज में एक पत्नि और एक माँ के लिए नित्य का वरदान ही है। दर्षन के प्रषंसापूर्ण शब्दों को सुनकर निन्नी भाउकता की धारा में यूँ बह जाती है कि थोड़ी देर के लिए वह दर्षन के साथ अपने दांपत्य जीवन की कल्पना तक कर बैठती है इसीलिए दर्षन की अनुपस्थिति में उसके कमरे को सँवारने में निन्नी को अतीव प्रसन्नता होती है। बाहर से लौटने के बाद दर्षन अपने कमरे के सुधरे रूप को देखकर भी किसी आभारपूर्ण प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त नहीं करता है, तो निन्नी की आँखें भर आती हैं और उसके " भीतर कहीं बहुत ही धुँधली भावना – या प्रत्याषा थी, क्या वह आगे बढ़कर पल्ले से खुद उसकी आँखें पोछेगा ?"[1] जो उसके हृदय की अपेक्षित प्रतिक्रिया ही थी, लेकिन वह आषा उपेक्षित ही रही। इस बिन्दु पर भी निन्नी में एक अंतर्द्वन्द्व की स्थिति बनती लक्षित होती है– "

1. " अनदेखे अनजानपुल " – राजेन्द्र यादव – पृ.सं. 25

2. वही – पृ. सं. 34–35

निन्नी को अपने दुर्भाग्य के प्रति इतना अधिक विष्वास था कि किसी प्रिय और मधुर स्वप्न की चेतना मन की आँखों के सामने लाते डरती थी–कहीं नजर न लग जाए. . या उस मधुर को बलात् झुठलाकर अपने को यकीन दिलाए रखना चाहती थी कि नहीं, वह उसक सबक की अधिकारिणी नहीं है। साथ ही यह भी अच्छी तरह जानती थी कि वही सब तो उसे मिल रहा है।"[2]

भाई के न लौटने पर नुमाइष देखने के लिए निन्नी जब दर्षन के साथ बस में चल पड़ती है और " पहली बार जब दर्षन का कन्धा उसके कन्धे से टकराया, मानो सारे शरीर में एक करंट दौड़ गई। एक नया अनुभव था, जिसकी उसे उम्मीद भी थी और आषंका भी।"[2] दर्षन के कमरे में रहते समय निन्नी की जो प्रेमा कांक्षायें भावना लोक में विचरण कर रही थी, वे निन्नी के बस में बैठते ही अतृप्त भौतिक वासना के धरातल पर आ जाती हैं। वह प्रकट रूप में भाई के न आने पर क्रोध व्यक्त करती है, लेकिन उसका अंतस् दर्षन क सान्निध्य और एकांत की ही अपेक्षा करता रहता है और वह बेचारी उसी भाउकता और भौतिकता के मध्य डोलती बंटती–सी रह जाती है।

1. " अनदेखे अनजान पुल " – – राजेन्द्र यादव – पृ.सं. 39

2. – – वही – – पृ. सं. 37

3. – – वही – – पृ.सं. 43

निन्नी अपने प्रति दिखाई जाने वाली दर्षन की आत्मीयता से भाउक हो विचारने लगती है कि शायद दर्षन की उस आत्मीयता का आधार प्रेम ही है और इस कल्पना से निन्नी की आषायें हरी–भरी हो उठती हैं। लेकिन ये सारी आषायें टूटकर तब बिखर जाती हैं, जब उसे ज्ञात होता है कि वास्तव में दर्षन और किसी से प्रेम कर रहा है। दूसरे दिन वह निर्लिप्स पूर्ण हृदय लिए भाई के साथ घर लौट जाती है। घर लौट आने के बाद भी उसका प्रेमा पेक्षी मन अपनी परोक्ष तिरस्कृति और पराजय को स्वीकार नहीं पाता है इस स्थिति में उसका मस्तिष्क उसे प्रेरित करता है कि यदि वह एक और प्रयत्न कर देखे, तो शायद उसे दर्षन का सान्निध्य प्राप्त हो सकता है, इसी प्रेरणा से वह अत्यंत आत्मीयतापूर्ण शब्दावली में दर्षन की पत्रों का सिलसिला आरम्भ कर देती है। उसका हृदय सतत् इसी प्रतीक्षा में रहता है कि दर्षन के अगले पत्र में अवष्य उसके प्रति प्रेम की अभिव्यंजना होगी। इस पत्र–संप्रेषन के दौरान भी वह द्वन्द्व ग्रस्त ही रहती है, यथा " आपके प्रति मन में जो आदर और श्रद्ध है, उसे कहकर ही जताना जरूरी है क्या ?" निन्नी ने यहाँ " आदर " और श्रद्धा शब्द दिये थे, और कलम घण्टे–भर " प्यार " शब्द लिखने के लिए लाइन पर मँडराती रही थी। आखिर हिम्मत पड़ी ही नहीं।"[1] निन्नी के इस संकोच का कारण एक भारतीय कन्या की सहज लज्जा–भावना नहीं, प्रत्युत उसकी कुरूपता को बार–बार स्मरण दिलानेवाली तर्क–बुद्धि की चेतावनी का परिणाम है, जो उसे सतत् करता है कि उसका हृदय दर्षन से जिस प्रेम की अपेक्षा कर रहा है वह उसकी धृष्टता ही है।

1. " अनदेखे अनजान पुल " – – राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 64

अचानक दीर्घ विलम्ब के बाद दर्षन के पत्र से निन्नी को ज्ञात होता है कि दर्षन का विवाह हो चुका है।

यह समाचार निन्नी की सभी आषाओं पर पानी फेर देता है। उस क्षण तक वह अपने जीवन में जिस किसी अप्रत्याषित घटना के हो जाने की प्रतीक्षा कर रही थी, वह होता ही नहीं है। अब निन्नी को अपना जीवन निरर्थक और निस्सार प्रतीत होने लगता है। वह भीषण सर्दी में भी मात्र सूती कपड़े पहनकर कालेज जाती है और डबल न्यूमोनिया लग जाने की उसकी आषा पूर्ण होती है लेकिन वह मृत्यू का ग्रास नहीं बन पाती है। उसकी इस दयनीय दषा में आकर दर्षन सौंदर्य की वास्तविक परिभाषा से उसकी आत्म ग्लानी को दूर करना चाहता है। लेकिन निन्नी निर्लिप्त भाव से मौन रह जाती है।" अभिषाप शरीर का असुन्दर होना नहीं, यह नारी शरीर पाना है इसे और सजाना – संवारना पाप का बढ़ावा देना होगा ?"[2] इसी भावनात्मक प्रष्न के उत्तर के अन्वेषण में अपने आंतरिक द्वन्द्व से बूझती निन्नी एक अभिषप्ता–सी प्रणीत होती है। यदि कहा जाय कि मन–मस्तिष्क के सैद्धांतिक–पक्ष का उदाहरण–पक्ष "राजेन्द्र यादव" प्रणीत उपन्यास " शह और मात " है, तो अनुचित न होगा। 3 जून से 23 जुलाई तक के इक्यावन दिनों को समेटते हुए डायरी शैली में लिखा गया यह उपन्यास कथा–लेखन के क्षेत्र में नये–नये कदम धरने वाली एम.ए. की एक छात्रा की बौद्धिकता और भावुकता के आपसी टकराहट की कहानी है, साथ ही साथ " दूसरे प्यार की जटिल और कटु कहानी है, जहाँ अपराध–भावना से पीड़ित प्रत्येक पात्र अपना पुनरान्वेषण करता है।

1. अनदेखे अनजान पुल – राजेनद्र यादव – पृ.सं. 115

और अंत में अपने को यंत्रणादाययक भ्रान्ति और छलना से घिरे पाता है। सुजाता के पास विदेष में जा बसे अपने प्रथम प्यार यानी तेज की स्मृतियाँ हैं और इधर है उदय धीरे–धीरे उसकी चेतना और चौकन्नेपन को घेरता हुआ। इन दोनों के बीच बंटी सुजाता जिस अंतर्द्वन्द्व को झेलती है, वह नारी–मात्र के अस्तित्व और व्यक्तित्व की रोमांचकारी याचना से साक्षात्कार

और खोज दोनों एक साथ हैं।''[2] अतः स्पष्ट है कि उपन्यास की प्रमुख नारी–पात्री सुजाता आद्ययांत जिस अंतर्द्वन्द्व से जुझती रही है, उसके इक्यावन दिनों का क्रमिक विष्लेषण ही उपन्यास की मूल–वस्तु है, और इस विष्लेषण के क्रम में लेखक ने नारी–हृदय में उमड़ने वाली उन सहज मानवीय संवेदनाओं और विचारों को स्वर देने की भरसक चेष्टा की है, जिन्हें सामाजिक भय और सहज संकोच के कारण उस उम्र की कोई भी युवती कदाचित ही अभिव्यंजना दे पाती हो। इस दृष्टि से यह उपन्यास अत्यंत प्रभाव–पूर्ण और संवेदनातंत्रियों को झनझना देने वाला है।

बम्बई महानगर के एक मध्य–वर्गीय परिवार की सदस्या है, सुजाता जो विष्वविद्यालय में एम.ए. हिन्दी फाइनल की छात्रा है। अत्यधिक साहित्यक रूचि होने के कारण वह कहानियाँ लिखती है और कुछ पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाषित भी हो जाती हैं। पाठकों से प्राप्त पत्रों और मित्रों की प्रषंषाओं से उसे बहुत प्रोत्साहन मिलने लगता है। इसी समय एक दिन पुस्तकालय में उसका परिचय उदय से होता है, जो स्वंय भी एक लेखक है। और तो सुजाता उदय के उपन्यासों की बड़ी रूचि से पड़ती है। उदय से एक नवोदित लेखिका के रूप में परिचित हो कर वह बड़े गर्व का अनुभव करती है।

1. शह और मान – राजेन्द्र यादव – (आवरण के पृष्ठ भाग से)

उदय के साथ परिचय के उन आरंभिक क्षणों में ही सुजाता उसे अपने घर पर आने का निमंत्रण देती है और उपन्यास में इसी बिंदू से सुजाता का व्यक्तित्व एक सहज संकोचषीला नारी और एक अतिषय आत्म–विष्वासिनी लेखिका के रूप में बँटता हुआ लक्षित होता है। व्यक्तित्व के इन दोनों परस्पर विरोधी रूपों में द्वन्द्व भी तत्काल आरम्भ हो जाता है। अतः एक तरह से उपन्यास का श्री गणेष ही सुजाता के आंतरिक द्वन्द्व के रेखांकन से हुआ है, यथा उदय को निमंत्रण देने के बाद वह विचारती है '' आखिर लोग कहानीकार के रूप में जानने तो लगे ही हैं मुझे। मैंने एकदम बुलाकर बुरा तो नहीं किया ?'' लेखिका सुजाता की तर्क–बुद्धि निमंत्रण का समर्थन करती है, लेकिन मध्य–वर्गीय सामाजिक और पारिवारिक परम्पराओं में पला–बढ़ा उसका हृदय अपने सहज संकोच के कारण उस निमंत्रण से शंकित हो उठता है। इस स्थिति में उसे यह सूझता है कि जरूरत पड़े तो वह परिवारवालों को उदय का परिचय किसी बड़े प्रोफेसर अथवा साहित्यकार के रूप में दे दगी, जिस से लोगों की बला टल सकती है।

सुजाता को बेसब्री का इंतजार बेकार जाता है क्योंकि उदय उस दिन उसके घर पर यथा समय नहीं आ पाता है। इसके बाद कॉलेज की एक साहित्य–सभा में पुनः वह उदय से मिल पाती है और उसके पूछने पर उदय कहता है कि वह अपनी बहन के कारण ही सुजाता के घर नहीं आ पाया था लेकिन सुजाता को महसूस होता है कि उदय बहन का बहाना बना रहा है और वह शायद बड़ा झेंपू भी है। वह उसी दिन उदय को अपने साथ घर ले आती है।

1. शह और मात – – राजेन्द्र '' यादव – पृ.सं. 17

अपनी एक नई रचना उसे दिखाती है। उसे लगता है कि उदय बड़ा दंभी होगा इसलिए उसके दंभ को चूरकर उसक पर अपना प्रभाव जमाना चाहिए, जो शायद उतना सरल कार्य नहीं है क्योंकि उसे प्रभावित करने के लिये कोई भी कदम उठाना पड़ सकता है, जिस में कदाचित नैतिकता का कोई प्रष्न आड़े आ सकता है। वह पुनः द्वन्द्व में पड़ जाती है और उसे महसूस होता है कि '' चाहे एक बार शालीनता और नैतिकता को सारी हदें तोड़ देनी पड़े, लेकिन इस व्यक्ति को उँगलियों पर नचा डालूँ।''[1] इस संदर्भ में उसका हृदय शंकित हो उठता है कि कहीं उदय के साथ के इस वार्तालाप में उसने अधिक छूट तो नहीं ले लो ? लेकिन उसकी शंका का निदान करते हुए उसकी तर्क–बुद्धि जो तथ्य प्रस्तुत करती है, वह उसके सबल बुद्धि–तत्व का प्रतीक है। वह कहती है '' यह भी मैं जानती हूँ कि नारी की ली हुई लिबर्टी का पुरूष शायद ही कभी बुरा मानता हो। जहाँ तक मेरा अनुमान है, यह चीज प्रच्छन्न रूप से उसके अहं को संतुष्ट ही करती है। लेकिन वह उस लिबर्टी को प्रायः एक ही अर्थ में लेता है कि '' माल पटाउ '' है।''[2] सुजाता की इस उक्ति में पुरूष की यथार्थ प्रवृत्ति को परख लेने की अचूक शक्ति ही द्योतित हो रही है।

कॉलेज के प्रोफेसर वर्मा जब आधुनिक उपन्यासकारों पर व्यंग्य कसने लगते हैं, तो सुजाता को लगता है कि उदय की ही आलोचना हो रही है और उसका मन व्यग्र हो उठता है। सुजाता के दूर के रिष्ते की कोई बुआ जब उसके पिता से उसकी षिकायत करते हुए सुजाता की शादी करवा देने की बात कहती है।

1. शह और मात – – राजेन्द्र यादव – – पृ. सं. 27

2. – – वही – – पृ.सं. 36

तो उसका लेखिका–व्यक्तित्व विद्रोह कर उठता है। वह विचारती है कि विवाह कर लिया जाय तो रही–सही लेखन–क्षमता भी समाप्त हो जायेगी और शेष जीवन सिलाई–बुनाई में ही कट जायेगी। इस विचार–धारा में बहते जाते समय अचानक सुजाता के मस्तिष्क में एक प्रष्न यह कोंध जाता है कि वास्तव में उसे जो आदर मिल रहा है, उसका आधार उसकी '' लड़की '' होकर रचनायेंक र सकना है अथवा वाकई उसके लेखन में आदर पाने योग्य क्षमता है ? इसका उत्तर न पा सकने की स्थिति में सुजाता पुनः नारी और लेखिका के द्वन्द्व में पड़ जाती है स्वंय इस द्वन्द्व का उल्लेख करते हुए सुजाता कहती है '' जब भी कहीं अपनी तारीफ सुनती हूँ तो लगता है जैसे कोई भीतर बोल रहा हो–देख, यह तारीफ तेरी नहीं, तेरे लड़की होने की है।'' लेकिन जब कोई लड़की होने की तरफ ध्यान नहीं देता और रचनाओं के ही बल पर उन्हें अपेक्षा या आलोचना देता है तो मैं दुहरे अपमान से क्यों तड़प उठती हूँ ? यानी खुद चाहती हूँ कि रचना के बल पर जाँचों, मगर यह मत भूलो कि मैं लड़की हूँ। अजब द्वन्द्व है।''[2] यहाँ सुजाता की विडंबना यह है कि उसका हृदय उसकी '' लेखिका '' की अस्मिता के साथ–साथ अपने नारीत्व की पहचान को भी उजागर करना चाहता है, जब की उसका '' लेखिका व्यक्तित्व '' मात्र उसकी लेखिका होने को ही मान्यता दिलवाना चाहता है और उस मान्यता की आधार–भूमि के रूप में ''नारीत्व'' का होना उसे कदापि स्वीकार्य नहीं है। इसी विरोधाभास के कारण सुजाता के अंतस में सतत् द्वन्द्व बना रहता है।

1. शह और मात – – राजेन्द्र यादव – – पृ.सं. 43–44

www.ignited.in

एक दिन अपनी सहेली रेखा के घर जाने के लिये सुजाता बस स्टॉप पर खड़ी रहती है, तो अचानक उसे उदय दिख पड़ता है और वह उसके पास दौड़ कर पहुँच जाती हैं। दोनों एक ईरानी रेस्त्राँ में बैठे–बैठे जमकर साहित्यक चर्चा करते हैं। उस दौरान उदय जब कहता है कि सुजाता की कहानी कुछ–कुछ मोपासाँकी किसी कहानी से मिलती–जुलती लगती है, तो वह चौंककर पानी–पानी हो जाती है। वह अपनी सफाई देती हुई कहती है कि उसने कभी मोपासाँ को नहीं पढ़ा है। सुजाता कभी–कभी शंकित हो उठती है कि कहीं उदय उसके मनके किसी निर्बल–सुत्र को पकड़ तो नहीं लेगा, लेकिन तुरंत सुजाता की लेखिका उसे ढाढस बंधाती है कि उदय में इतनी–पैनी दृष्टि कतई नहीं है। जब उसे उदय अपूर्ण इच्छाओं से भरे–पड़े सामान्य व्यक्ति–सा दीख पड़ता है, तब उसका ह्रदय–पूर्ण सहजता के साथ पसीज उठता है और वह उसे अपनी बाँहों में भरकर उससे कहना चाहती है " तुम बहुत भटके ही बहुत थके हो। आओ, तुम्हारी भटकन और थकन को एक समर्थ दिषा दे दूँ [1] और इस संदर्भ में उसके व्यक्तित्व से लेखिका अदृष्य–सी हो जाती है और वह एक शुद्ध नारी–मात्र रह जाती है, जो त्याग और समर्पण हो जानती है। लेकिन अगले ही क्षण उसकी लेखिका उसे संचेत कर देती है कि उदय उसके अध्ययन का विषय मात्र हैं। और इस विषय को वह उसके पूरे संदर्भ के साथ अपनी रचना में प्रस्तुत करना चाहती है। उदय संबंधी सामग्री–संचय के लिए उसकी तर्क–बुद्धि मचलकर कहती है " थोड़ी–बहुत छूट भी तो देनी होगी। बिना चारा डाले कबूतर पास कैसे आएगा. . ? अपने पर कैसे गिनने देगा ? पहले तो उसे थोड़ा विष्वास में लाना होगा न. . । मूर्ति बनाने के लिए मिट्टी में हाथ भी तो सानने पड़ते हैं।"[2] एक ओर अत्यंत सजग लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित होने की कल्पना का नषा उसे उदय के साथ पूर्ण नैकट्य व्यवहार के लिए प्रेरित करता रहता है, जिस के कि वह अपने विषय का सूक्ष्म अध्ययन कर सकें, तो दूसरी ओर उसका प्रेमापेक्षी ह्रदय भी इस निकटता को सामाजिक दृष्टि से प्रमाणित हो जाने की अपेक्षा करता रहता है।

कॉलेज में धुवस्वामिनी नाटक का मंचन होता है और सुजाता नायिका बनती है। निमंत्रण देने के बाद भी उदय नाटक देखने नहीं आता है, तो सुजाता क्षुब्य होती है। इसका कारण जानने के लिए वह उदय के घर जाती है और वहाँ उदय तथा उसके मित्र मुलायम सिंह की जीवन–षैली से उसे बम्बई महानगर के निम्न–मद्य–वर्गीय जीवन की अभाव ग्रस्तता का बोध होता है। उसका सहज नारी–ह्रदय द्रवी–भूत हो जाता है वह स्वंय से कहती है " मनुष्य को क्या बस, स्वार्थी, दुष्ट और आत्मनिष्ठ ही होना चाहिए ? क्योंकि परोपकार, हमदर्दी, दया, करूणा मानवीय रागात्मक भावनाएँ हमेषा " किसी " को लेकर ही होती है और धीरे–धीरे वह कोई हमारे अपने नजदीक होने लगता है, दूरियाँ सिमटने लगती है, औपचारिकता और फोर्मेलिटी के पर्दे उठते चले जाते हैं और हम पाते हैं कि यह संबंध केवल जड़ लेन–देन का ही नहीं है।" उदय के प्रति सुजाता के मन में असीम सहानुभूति उमड़ पड़ती है। वह नाटक में अपने पात्र–घोषण की सफलता और प्रिनसेस अपर्णा द्वारा दिये गये सोने के पदक के बारे में विस्तृत वर्णन करती है, लेकिन उस में उदय की अरूचि देखकर कुढ़ने लगती है।

1. शह और मात – – राजेन्द्र यादव –– पृ.सं. 95

उदय, सुजाता से कहता है कि उसकी बहन का नाम भी अपर्णा ही है और उसे उपन्यास के अंत तक इसी भ्रम में रखता है कि प्रिनसेस अपर्णा और उसकी बहन अपर्णा अलग–अलग है। उदय चाहता है कि सुजाता और अपर्णा की मानसिक गहराईयों का अध्ययन करने के लिए एक दूसरे के लिए एक दूसरे को माध्यम बनाया जाय और उदय के इस प्रवंचनापूर्ण प्रयोग से अनभिज्ञ सुजाता अपर्णा के निजी जीवन की बातें यथा–समय उदय तक पहुँचाती रहती है। जब भी वह उदय से उसके कमरे में एकांत में मिलती है तब–तब उसका अंतस संघर्ष – रत हो जाता है। उसका नारी ह्रदय किसी अप्रत्याषित दुर्घटना की कल्पना से भय–भीत होता है, तो उसकी दामित वासना इसी अवांछित के हो जाने की प्रतीक्षा करती है, लेकिन अगले ही क्षण उसकी लेखिका विद्रोह कर उठती है कि वह इतनी कमजोर नहीं है कि उसके साथ उदय कोई मनमानी कर सके।

अपर्णा और उदय की स्मृतियों से सुजाता जितनी दूर रहना चाहती है, उतनी ही वे उसका पीछा करती रहती है। इसी दौरान उसे अपने अतीत के प्रेमी तेज और उसके किये गये विष्वास–घात की याद आती है, तो थोड़े समय के लिये सुजाता अनुभव करती है कि उसका मानसिक संतुलन बिगड़ता जा रहा है। वह विचारती है कि बस में यात्रा करते समय चाहे लड़के हों या युवक, उन्हें उसके (सुजाता) साथ कुछ अवांछित करने का अवसर देकर, बाद में शोर मचाकर भरी–भीड़ में जूतों से मारा जाय, तो कितना मजा आयेगा। तेज के द्वारा किये गये विष्वासघात के प्रतिक्रिया–स्वरूप उसमें जो द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न होती है, उसमें भी बुद्धि–तत्व के प्रबल विद्रोह के कारण ही सुजाता ऐसे विचारों के लिए अवसर देती है। सुजाता अधिकांषतः इसी मानसिक उहापोह में रहती है कि उदय के साथ उसका संबंध प्रेमिका स्थर का है अथवा मात्र अध्येता का। इस आंतरिक बोझ से मुक्ति पाने के लिए वह विचारती है कि उदय के साथ के उसके संबंध को कोई निष्चित और स्थाई रूप दे देना चाहिए। इसी सिलसिले में जब वह उदय से मेरैन ड्राईव पर मिलती है, तो बातों ही बातों में वह सुजाता के कंधे पर हाथ रख देता है और पुनः सुजाता इस द्वन्द्व में पड़ जाती है कि कहीं वह भी भावुकता की धारा में बहती हुई उदय के हाथ को झटक नहीं दे पा रही है या वह उदय को थोड़ी सी छूट देकर उसके व्यक्तित्व की अनजान परतों को उधेड़ने की प्रतीक्षा कर रही है ? लेकिन संकोचवष उदय अपना हाथ हटा लेता है, तो उसकी मानसिक स्थिति का अंदाजा लगाते हुए सुजाता विचारती है " और जब मैं भावुक नहीं हूँ तो ये " खतरे " मेरा क्या बिगाड़ेंगे ? जरा इन्हें दू–बदू देख ही लेने में क्या हर्ज है ? तभी एक अज्ञात – सा भय उभरा – कहीं अपने ही जाल में फँस गई तो ?[1] सुजाता के इन परस्पर विरोधी विचारों में प्रयोगोसक लेखिका प्रवृत्ति और संकोचषील सहज नारी–प्रवृत्ति का द्वन्द्व स्पष्टतः लक्षित होता है।

नारीमन पाइन्ट से लौटने के बाद सुजाता को उदय का नैकट्य भाव–विभोर–सा कर देता है। उसका ह्रदय उस निकटता के स्थाइत्व की अपेक्षा में असीम आनंदानुभूति प्राप्त करता है। लेकिन उसी समय सुजाता को उदय का प्रष्न स्मरण हो आता है कि सुजाता ने अतीत में किसी से प्रेम किया अथवा नहीं।

1. शह और मात – – राजेन्द्र यादव –– पृ.सं. 130

जिसके उत्तर में उसने तेज की बात छिपाते हुए, " नहीं " कह दिया था। इस संदर्भ में सुजाता को पुनः अंतर्द्वन्द्व से जुझना पड़ता है, यथा उसका ह्रदय कहता है कि यदि उसके मन में उदय के प्रति सच्ची प्रेमी – भावना है, तो उसे उदय से झूठ नहीं बोलनी चाहिए थी, लेकिन उसकी तर्क बुद्धि का मानना है कि एक प्रेमी–युगल में वास्तविक प्रेम के संदर्भ में जो कुछ होता है, वह कुछ तो उसके और उदय के मध्य हुआ ही नहीं

www.ignited.in

है, अर्थात् घनिष्ट आत्मीयता के लिए एक पुरूष और नारी में शारीरिक नैकट्य की जिस अनिवार्यता का समर्थन उदय और अपर्णा कर रहे थे, और जिसे सुजाता स्वंय अनावष्यक मान रही थी, आज वही '' अनावष्यकता '' उसके और उदय के प्रेम संबंध पर प्रष्न–चिह्न–सा लग गया है। इसलिए सुजाता के अंतर्द्वन्द्व संबंधी कारणों में उसका तर्क–गत विरोधाभास भी एक है।

उपन्यास में आद्यान्त सुजाता का अंतर्द्वन्द्व उसके नारी और लेखिका व्यक्तित्वों के मध्य ही घटित होता है। उदय का नैकट्य पाकर उसका ह्रदय–तत्व प्रेमापेक्षी हो उमड़ पड़ता है, लेकिन उदय से दूर हटते ही उसकी लेखिका सजग और जागृत होकर विविध तर्क प्रस्तुत करने लगती है। घातव्य है कि दो–चार कहानियों के छप जाने मात्र से जो प्रतिष्ठा सुजाता की लेखिका को मिलती है, उसी के आकर्षण में भ्रमित हो जाने के कारण उसमें अतिषय आत्म–विष्वास जागृत होता है और वह उदय के व्यक्तित्व–विष्लेषण के लिए आगे बढ़ती है। अंत तक वह इसी भ्रम में रहती है कि वह अपने इस साहित्य–सर्जन–प्रयोग में सफल हो रही है।

1. शह और मात – – राजेन्द्र यादव –– पृ.सं. 169

जिसके लिये वह अपने बुद्धि–तत्व की प्रेरणा से उदय को कुछ सीमा तक उन्मुक्त होने की छूट भी दे बैठती है। ऐसे संदर्भों में वह अपने नारी ह्रदय के उस प्रेरणा–सूत्र को पकड़ने में असफल होती है, जो कि उसके उम्र के अनुरूप प्रेम के लिये मचल उठता है। यदि सुजाता के व्यक्तित्व में लेखिका का डामिनेषन् ही होता, कदाचित उसे उदय के साथ बिताए जा रहे सुखद दाम्पत्य–जीवन संबंधी स्वप्न आते ही नहीं लेकिन सुजाता के डायरी के पन्नों में लेखिका की अपेक्षा उसका नारीत्व कम ही उभरा है, फिर भी उसके प्रभाव से सुजाता का असंपृक्त रह जाना असंभव ही है। इसीलिए चाहे सागर तट हो या उदय के कमरे का एकांत सुजाता का प्रेमा पेक्षी नारी–ह्रदय भी सदा किसी–न–किसी अप्रत्याषित घटना के हो जाने के संकोच और आने–जाने वालों द्वारा देखे जाने के भय से त्रस्त रहता है '' नारी '' और लेखिका –– इन दो व्यक्तित्वों में संतुलन स्थापित करना सुजाता के लिये नितांत असाध्य है और यही उसके अंतर्द्वन्द्व का कारण भी। पति के व्यवहार से क्षुब्ध साधना स्वतंत्र जीवन बिताने के लिए पति को छोड़कर चली आती है। जिस बौद्धिकता को वह अपने जीवन–सौध की सषक्त नींव मानती आयी है, उसे इस एकांत जीवन में कमजोर होते महसूस कर वह घबरा उठती है। एकांत में उसका ह्रदय प्रेमानुभूति की जैविक अभिव्यक्ति की प्राप्ति हेतु तड़प उठता है। एक ओर प्रेम के लिए ह्रदय की छटपटाहट तो दूसरी ओर पति के पास न लौटने के लिए विवष करने वाला मस्तिष्क का तर्कपूर्ण दबाव साधना को द्वन्द्व ग्रस्त करते हैं। वह इस द्वन्द्व से मुक्ति को आत्मघात में पाना चाहती है।

1. '' पथ की खोज '' – डॉ. देवराज – पृ.सं. 224

परन्तु जहर के मिलने तक उसका जोष ठंडा पड़ जाता है। अंततः साधना शेष–जीवन को समाज कल्याण के कार्यों में बिताने का निर्णय लेती है। शिल्प, वस्तु–विन्यात तथा इनके अंतर्गत स्थिति–विषेषों, घटनाओं, चरित्रों और विभिन्न मानसिकताओं के गम्भीरतापूर्ण–विष्लेषण विधि के आधार पर डॉ. देवराज प्रणीत उपन्यास ''अजय की डायरी '' मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कोटी में अपना विलक्षण–स्थान रखता है। यूँ तो उपन्यास का मूल उद्देष्य उपन्यास के प्रमुख पात्र अजय के आंतरिक–द्वन्द्व से संबद्ध तथ्यों का विष्लेषण करना है, लेकिन इस उपक्रम में लेखक ने अजय के जीवन–परिवेष में आने वाले अन्य पात्रों की मानसिकताओं का भी यथोचित विष्लेषण प्रस्तुत किया है। विवेच्य विषय के अंतर्गत यहाँ इस उपन्यास की प्रमुख नारी–पात्री हेमा जोषी के अंतर्द्वन्द्व के व्याख्या विष्लेषण का प्रयास किया गया है। बौद्धिकता के स्तर पर इस उपन्यास की नारियाँ अत्यंत अषक्त है, फिर भी उनका नारी–सहज कोमल ह्रदय–तत्व उस बौद्धिकता से पूर्णतः आच्छन्न नहीं हो पाया है। तुलनात्मकतः ह्रदय–तत्व की अपेक्षा बुद्धि–तत्व का पक्ष शक्तिषाली होने के कारण इनका अंतर्द्वन्द्व स्थिति विषेषों में भी निगूढ़ ही रहा है।

नारी की यह अकृत्रिमता ही उसके व्यक्तित्व के आकर्षण का प्रधानगुण और उसके ह्रदय–तत्व का एक अभिन्न अंग है। अपनी इस सहज प्रवृत्ति के कारण ही हेम, अजय की विद्वस्ता के प्रति असीम श्रद्धा रखती हुई, यात्रा में आद्यान्त अजय की सुविधाओं के प्रति सतर्क रहती है, ऐसी सतर्कता को वह अपना कर्तव्य भी मानती है।

1. अजय की डायरी – डॉ. देवराज – पृ.सं. 183

2. वही – पृ.सं. 149

यात्रा के दौरान आध्यात्मिकता को लेकर बहस में दीपिका जहाँ असीम के प्रति आस्था को मानव की दुर्बलता के रूप में सिद्ध करने में अपनी बौद्धिकता का दर्प दर्षाती है, वहीं हेम उस तथ्य को पारंपरिक संस्कार की संज्ञा देती हुई अत्यंत सहजता के साथ इस प्रकार स्वीकारती है।

मैं ईष्वर को जरूरी ही मानती हूँ दूसरे देवी–देवता शायद उन्हीं की विभिन्न शक्तियों के नाम हैं। यों मंदिरों में जाकर देव–मूर्तियों को प्रणाम करना मुझे अच्छा लगता है। शायद यह मेरा बचपन का संस्कार है।''[1] बौद्धिकता के पक्षधरों द्वारा करार दिये गये तथा कथित दुर्बलता को भी अपना संस्कार कहने में हेम की नारी–सहज विनम्रता के साथ उसका अदम्य साहस और संयम भी अभिव्यक्ति पाते हैं।

नैतिकता और अंतरिक द्वन्द्व को लेकर उठे विवाद के संदर्भ में अपनी तर्क–षाक्ति और बौद्धिकता का परिचय देती हुई हेम अपने व्यक्तित्व के दूसरे पहलू को साकार करती हुई कहती है '' मैं नैतिक भेदों को सिर्फ रूढ़ि नहीं मानती, लेकिन यह ठीक है कि द्वन्द्व भलाई–बुराई के बीच उतना नहीं होता जितना कि दो भलाईयों में से एक को छोड़ने में या दो बुराईयों में से एक को स्वीकार करने में। द्वन्द्व का कारण यह निर्णय लेने को कठिनाई होती है कि कौन–सा रास्ता ज्यादा भलाई या कम बुराई का रास्ता है।''[2]

हेम में संदर्भ और परिवेष के अनुरूप स्वंय को डाल लेने की अद्भुत क्षमता है। जहाँ वह हरिद्वार और अमृतसर के मंदिरों में परंपरानुरूप वस्त्र धारण करती है।

1. अजय की डायरी – डॉ. देवराज – पृ.सं. 88

2. वही – पृ.सं. 63

वहीं सम्मेलन के परिसर में वह अपने व्यक्तित्व की आधुनिकता का परिचय भी देती है। वह नहीं चाहती कि यात्रा के दौरान अजय को कहीं अकेलापन महसूस हो। इसीलिए वह हमेशा अजय का साथ देने लगती है। इस प्रकार इनकी यह अप्रत्याषित सामीप्यता दोनों के हृदय में प्रेम–भावना जागृत करती है। ऐसा भी नहीं कि हेम अजय के विवाहित और पिता होने के तथ्य से अनभिज्ञ है। अजय और हेम की पारस्परिक अपेक्षा एक नैसर्गिक प्रेरणा की प्रतिक्रिया मात्र है। हेम हृदय से चाहने लगती है कि अजय दीप की भाँति उसे भी '' तुम '' शब्द से संबोधित करें, जिससे उनकी आत्मीयता और घनिष्ट हो सके।

श्रीनगर से गुलमर्ग जाते समय हेम, अजय से पूछती है कि वह उस में दिन बातों की कमी देख रहा है। इस प्रश्न के माध्यम वह अपने प्रति अजय के विचारों की थाह लेना चाहती है। प्रश्न के उत्तर में अजय कहता है '' यूँ सफर फ्राम सेवरेल ऐक्सेसेज, एक्सेज ऑफ स्वीटनेस, एक्सेस ऑफ जेन्टिलनेस, एक्सेस ऑफ बैलेन्स एण्ड सेल्फ–कन्ट्रोल''[2] (तुम्हारी कमी है कई चीजों का अतिरेक–मधुरता का अतिरेक, शालीन मृदुता का अतिरेक और सन्तुलन व आत्म–नियंत्रण का अतिरेक। हेम कोई अपवाद–स्वरूपा–नारी नहीं है, जो कि अपनी प्रषंसा सुनकर उत्फुल्ल न हो। लेकिन ध्यातव्य है कि हेम का हृदय अजय के उक्त शब्दों में निहित सच्ची आत्मीयता को भाँप लेता है प्रतिक्रिया स्वरूप वह अजय के प्रति अपनी अनुरक्ति को भावुकतापूर्ण शब्दों तक ही सीमित न रखकर भौतिक–स्पर्ष के धरातल पर रूपायित करना चाहती है।

1. अजय की डायरी – डॉ. देवराज – पृ.सं. 137

2. वही – पृ. 143

जिसकी अनुभूति गुलभर्ग से लौटते समय हेम के पार्ष्व में बस में बैठै अजय को कुछ इस प्रकार होती है, '' कुछ देर बाद मुझे अहसास हुआ, लगा, कि वह अपनी सीट से संयुक्त अंग के बाजू का अधिक दबाव, मेरी ओर प्रेरित करने लगी है। इस अपृत्याषित बढ़े हुए दबाव और उससे बढ़ी उष्णता का अहसास, मुझे कुछ विलंब से हुआ।''[1] इस संदर्भ में वह अपनी तर्क–बुद्धि का इस प्रकार सहारा लेना चाहती है, जिससे कि उसकी इस रहस्यात्मक–भौतिक–प्रतिक्रिया के मूल में निक्षिप्त अजय की आत्मीयता का आभास यात्रा–दल के अन्य किसी को न हो सके।

गुलमर्ग से श्रीनगर लौटने पर हेम कुछ अस्वस्थ–सी हो जाती है। समय बिताने के लिए जब सभी लोग हेम को होटल में छोड़कर सिनेमा चले जाते हैं, तो अनिच्छा के कारण अजय बीच में ही होटल लौट आता और हेम को रोती हुई पाता है। अजय के पूछने पर वह मात्र यही कहती है '' नहीं, बात यह है। मुझे अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए न। मुझे क्या अधिकार है कि जो स्पष्टतः उसके मन–मस्तिष्क के द्वन्द्व की ही अभिव्यंजना है। हेम का हृदय भावनाओं की संवेदनषील प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित नहीं कर पाता है, परन्तु उसकी तर्क–बुद्धि उसे सचेत करती ही रहती है कि उसकी उन प्रतिक्रियाओं की पृष्ठ–भूमि में चाहे जिस किसी सिद्धि की भी आकांक्षा क्यों न हो, उसकी प्राप्ति सामाजिक मान्यता के संदर्भ में नितांत असंभव है। सोनमर्ग में ग्लेषियर देखने जाते समय अजय हेम के प्रति अपनी अनुरक्ति को भावुकतापूर्ण शब्दों में व्यक्त करता है।

1. अजय की डायरी – डॉ. देवराज – पृ.सं. 157

2. वही – पृ. 179

और उसकी यथानुरूप प्रतिक्रिया में हेम से चुम्बन की माँग करता है, लेकिन व निर्लिप्त–भाव से अनसुनी–सी रह जाती है, जिससे अजय में आत्मग्लानि की भावना उमड़ पड़ती है। तब से वह हेम से कुछ–कुछ अछूता–सा रहने लगता है। जब श्रीनगर में इला बीमार पड़ जाती है, तो दल को दो दिन वहाँ रूकना पड़ता है। इस समय का सदुपयोग करने के लिए हेम वैष्णव देवी मंदिर देखने जाना चाहती है और साथ चलने के लिए अजय पर जोर डालती है।

अजय की सरल आत्मीयता और अकलुष भावुकता से हेम का हृदय कुछ इस प्रकार अभिभूत हो जाता है कि वैष्णव देवी मंदिर में दर्षन के उपरांत वह अजय से कहती है '' तब अपनी नाराजी दूर कर लीजिए, किसी भी।''[1] आत्मीयता प्राप्ति की प्रतिक्रिया में चुम्बित होने के लिए स्वंय को प्रस्तुत करने की कोमलता जहाँ हेम में लक्षित होती है वहीं इस भावुकतापूर्ण संबंध की सामाजिक दृष्टि में अनैतिक सिद्ध न करवाने की सतर्क व्यावहारिकता भी। वह अजय से स्पष्ट शब्दों में कहती भी है '' व्यावहारिक तो बनना ही पड़ता है, नहीं तो दुनिया मूर्ख समझती है।''[2]

दिल्ली लौट आने पर इसी व्यावहारिक बुद्धि का प्रयोग करती हुई हेम दीप से अजय को पुछवाती है कि वह उसे और इला को अंग्रेजी काव्य पढ़ाये। इस प्रकार वह अपने और अजय के मध्य व्यवधान को कम करना चाहती है। दीपिका के घर में अजय, हेम और इला को पढ़ाने लगता है। इस दौरान हेम की तटस्थता अजय को असंयत करने लगती है।

1. अजय की डायरी – – डॉ. देवराज –– पृ.सं. 206

2. –– वही –– पृ.सं. 221

वह अपनी इस स्पष्टता को कटु शब्दों में लिखकर हेम को देता और कहता कि वह उसका उत्तर दे। उत्तर में अजय के नोटबुक में हेम अपने जिन विचारों को समग्रता में अंकित करने का प्रयास करती है, उसमें उसका आंतरिक–संघर्ष स्पष्टतः उभरता है। हेम द्वारा नोटबुक में लिखे गये वे अंष कुछ इस प्रकार हैं – '' 5 जनवरी :– उस दिन डॉ. साहब के कमरे में मैं चाय लेकर पहुँची, आप बहुत परेषान महसूस करने लगे थे। आपने पास बुलाना चाहा, मैं नहीं गई, इसकी आपको सख्त षिकायत है। किन्तु हमें सावधानी बरतनी ही चाहिए।

जीजी का नौकर श्याम काम से इधर घूम रहा था। कमरे से निकलकर मैं कुछ देर वहीं खड़ी रही थी। आप नहीं जानते, आवेग को दबा रखने में और भी ज्यादा इनर्जी खर्च होती है।

'' उस दिन मैं घर पर बेहद परेषान रही। रह–रहकर आपकी आकुलमुद्रा याद आती थी। आपका उस तरह उदास भाव से देखना आप मुझे ऐसी दृष्टि से न देखा कीजिए।

'' आप मुझे बहुत इन्नोसेण्ट समझते हैं, है न ? मेरी असलियत जानेगे तो जाने क्या सोचेंगे। हाँ जी, मैं स्वार्थी भी हो सकती हूँ। आपने उस दिन बताया कि पाँच तारीख को पढ़ाएगें। मैंने इसकी खबर इला को नहीं दी, सिर्फ यह कह दिया कि आप दो तारीख को नहीं आ सकेंगे। हूँ न मैं स्वार्थी ? नहीं तो फिर मैं वैसा मौका कैसे पाती ? सच यदि मैं ज्यादा परेशान न होती तो वह अपराध न करती।

'' आज मैं ने आपको बढ़ाने नहीं दिया, माफ करेंगे। मैं खुद बड़ी चलायमान रहती हूँ, बाहर से जितनी स्थिर और शान्त दिखती हूँ अन्दर से उतनी ही आकुलित।

12. जनवरी : एक हफ्ते तक आपका इन्तजार करना बहुत खलता है, इसीलिए परीक्षा की निकटता के बहाने, आपसे जल्दी आने को कहा गया है। इला को मैं ने ही सुझाया था। आपका समय अवष्य ही ज्यादा बर्बाद होगा, पर क्या किया जाए। मेरी मजबूरी। अगली बार यह नोटबुक मैं आपको दे दूँगी। दूसरी मुझे दे देंगे।

'' 17 जनवरी :– आपका लिखा हुआ सब एक सांस में पढ़ गई। पढ़कर न जाने कैसा कष्ट हुआ। रात, नोटबुक को छाती से चिपकाए, मैं बहुत देर तक रोती रही।

'' आपको इस तरह, लुक–छिपकर, चोरी से बात करना, चूमना अच्छा नहीं लगता उसके बाद न जाने कैसी वेदना होती है, कैसा दर्द। आपको उससे संतोष नहीं होता। आप मुझे समग्रता में पाना चाहते हैं। और मैं सोचती हूँ आपको जो देती हूँ दे पाती हूँ वह कितना नगण्य है, मेरी वृत्तियों की कितनी अपूर्ण अभिव्यक्ति। में जानती हूँ मैंने आप पर जितना विष्वास किया है उसके आप पूर्ण तथा पात्र हैं। आप और धोखा देने की कोषिष करें, मुझे या किसी दूसरे को, मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। नहीं, नहीं मैंने ऐसा क्षणभर को भी नहीं सोचा, न कभी सोच सकती हूँ। आप मेरी कमजोरी से लाभ उठाएंगे। जैसे मैं इतनी भोली हूँ या थी। आप नहीं जानते, इन मामलों में नारी बड़ी व्यावहारिक होती है। व्यवहार की बात में शायद आपसे ज्यादा जानती हूँ – आप तो कुछ जानते ही नहीं।

कष्मीर यात्रा से लौटने के बाद पति अजय की निर्लिप्तता से शीला में शंका उत्पन्न होती है। वह दीपिका, हेम और इला को अपने घर पर बुलाकर उनके व्यक्तित्वों को टटोलना चाहती है। इसी बात को लेकर उठे विवाद के कारण अजय और इला को अपने घर बुलाकर उनके व्यक्तित्वों को टटोलना चाहती है। इसी बात को लेकर उठे विवाद के कारण अजय और शीला के बीच की खाई और बढ़ने लगती है। अजय विचारता है कि यदि वह अपनी भावनाओं को यथावत व्यक्त कर देगा, तो शायद शीला की शंका दूर होगी और वह उसके प्रति संवेदनशील होगी। इसी विचार से वह अपनी भावनाओं के केन्द्र में बसी हेम का नाम बता देता है लेकिन उसकी आषा के विपरीत शीला में हेम के प्रति घृणा ही बढ़ने लगती है। दूसरी ओर हेम इस बात से अनाभिज्ञ रहती है कि अजय ने ही पत्नि को उसका नाम बता दिया है।

हेम दूसरी बार अजय को अपना नोटबुक देकर अपनी आंतरिक दुविधा से संबंध अनेक अंषों का उल्लेख करती है, जिस में उसके मन और मस्तिष्क दोनों प्रतिबिम्बित होते हैं। वह कभी अजय और शीला के तलाक का उल्लेख करती है, तो कभी माता–पिता के प्रेम से वंचित हो जाने वाली मीना के प्रति समवेदना जताती है कभी अपने व्यवहार को शीला के प्रति अनाधिकार चेष्टा मानती है, तो कभी अपने घर पर शीला के धावे की कल्पना से काँप उठती है। सभी वास्तविकताओं से परिचित होती हुई भी हेम अपनी विवषता का बयान इस प्रकार करती है '' मैं यह सब जानती–समझती हूँ , लेकिन–लेकिन मैं मजबूर हूँ। हे भगवान क्या होने वाला है।''[1] हेम को जब ज्ञात होता है कि अजय ने ही पत्नि शीला को उसका नाम बता दिया है, तो वह दुःखी होती है और अजय की मानसिक विषुद्धता की प्रषंसा भी करती है। दूसरे ही क्षण यह भी सोचती है कि अजय की अव्यावहारिकता के कारण ही यह नयी समस्या उठ खड़ी हुई है इस प्रकार परस्पर विरोधी विचारों को नोटबुक के माध्यम व्यक्त करती हुई हेम स्वंय की वैचारिक दुर्बलता के बारे में लिखती है '' जो सोचकर काम नहीं करता उसे ऐसे ही पछताना पड़ता है– जैसे मैं पछता रही हूँ। सचमुच ही कोई रास्ता नहीं दिखता।''[2] हेम की इस आंतरिक द्विधा में उसका बुद्धि–पक्ष उसके ह्रदय–पक्ष की दुर्बलता की ओर इंगित करता प्रतीत होता है। हेम अपने और अजय के इस संबंध की न कोई संज्ञा ही दे पाती है, न ही उसे स्थायित्व प्रदान करने का मार्ग ही उसे सूझता है। इसी बीच अजय को एक सांस्कृतिक–अध्ययन के कार्य पर अमरीका जाने का अवसर मिलता है। हेम से अलगाँव की कल्पना से अजय दुःखी होता है, लेकिन अजय की विद्वत्ता से परिचित हेम उसे–हार्दिक बधाईयाँ देती है। शीला के प्रति जागृत संवेदनषीलता की प्रतिक्रिया कह लें अथवा वस्तु–स्थिति के विरूद्ध संघर्ष न करने की बौद्धिक प्रेरणा जो भी हो हेम को अपने जीवन यथार्थ से समझौता ही कर लेना पड़ता है, जो उसके विवाह में प्रतिकूल होता है।

1. अजय की डायरी – डॉ. देवराज – पृ.सं. 285
2. वही – पृ. 294

अपनी जीवन–यात्रा में निरंतर अग्रसर होने में व्यस्त किसी–किसी नारी पर कभी–कभी परिस्थितियों की ऐसी भीषण मार पड़ती है कि वह अपनी अपेक्षाओं से परे हटकर कभी बनने और कभी टूटने लगती है और नारी के इस व्यक्तित्व–निर्माण और विघटन के मध्य उसे किस कदर अपने आंतरिक–संघर्ष से जूझना पड़ता है, का एक जीवन्त–चित्र ही सन् 1954 ई. में प्रकाषित '' नरेष मेहता '' का उपन्यास '' डूबते मस्तूल '' है। अनादि से अर्वाचीन युग तक नारी जीवन के साथ उसकी वह विवषता एक परछाई सी बनकर चली आ रही है। इसीलिए उस विवषता के साथ–साथ आंतरिक द्वन्द्व भी नारी–व्यक्तित्व का अनिवार्य–अंष बनता जा रहा है, '' वस्तुतः नारी की यह विवषता किसी भी युग में कम नहीं हुई है। उसका विन्यास परिवेष के बदलने के साथ कुछ परिवर्तन भले ही लगे पर पुरूष कभी उसे वही स्थान और मान्यता नहीं देता जो वह किसी अन्य पुरूष को देता है। स्वंय नारी को अपने इस भोग्य स्वरूप से कितना विद्रोह है पर प्रकृति के विधान का उल्लंघन पर पाना एक सनातन समस्या है।''[1] इस सनातन समस्या के नवीनतम संस्करण से त्रस्त '' डूबते मस्तूल '' की रंचना अपने जीवन में पाँच–पाँच पुरूषों से जुड़कर और दो–दो बार माँ बनकर भी वह कुछ पा सकने में विवष ही रही, जो कि एक सीमित दायरे के परिवार में साधारणतया एक आम नारी पाने में सफल हो जाती है।

1. डूबते मस्तूल – नरेष मेहता – (आवरण पृष्ट से)

रंजना अपने मन पर जमे हुए अतीत के अनुभव–परतों के बोझ को उतार देने के लिए ही लेखक स्वामी नाथन को जान–बूझकर अपने अतीत के एक प्रेमी अकलंक के रूप में मनवाते हुए अपनी कथा सुनाती है। वह स्वंय को किसी भी प्रकार के दया और करूणा के लिए अपा ही नहीं मानतीा, प्रत्युत अपने बहु विवाहीय जीवन–पक्ष के संदर्भ में पूर्ण–ह्रदय से ईमानदारी दर्षाती हुई कहती है और अकलंक। फिर एक नहीं अनेक विवाह किये और तोड़ फेंके। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि लोगों के आधे नाम का लेबिल भी लगाने की मुझे आवष्यकता न रही। और यह भी नहीं अकलंक। कि मुझे

पिछला सारा इसलिए छुपाना पड़ा हो कि कहीं मुझे आगे कोई न मिले बल्कि पिछला कहकर मैंने आगे का बहुत कुछ पाया।[1] लेकिन हर बार अपने भाविपति से अपने अतीत की कहानी कहकर एक जैसी सह्रदयता–पूर्ण प्रतिक्रिया की अपेक्षा करना ही रंजना के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है। उसके जीवन की कतिपय उल्लेखनीय घटनाओं से ही उसके अंतर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति होती है।

तेरह–चौदह वर्ष की उम्र में रंजना आपने माता–पिता के साथ सीमा प्रांत के एक गाँव में रहती है। वह उस गाँव के पठान '' सर्दार महमूद '' के बेटे सय्यद की ओर आकर्षित होती है। एक दिन माता–पिता से झूठ बोलकर वह सय्यद के साथ भाग जाती है, लेकिन अपने सर्वस्व–समर्पण के थोड़े समय के बाद ही रंजना को ज्ञात होता है कि सय्यद की पहले ही चार बीवियाँ हैं और अ बवह मजहबी नियम के कारण पाँचवी पत्नि नहीं रख सकता है। इसलिए वह उसे अफगानों के हाथ बेचने जा रहा है।

1. डूबते मस्तूल –– नरेष मेहता –– पृ.सं. 64

रात के समय रंजना बड़ी होषियारी से अपने बन्धन छुड़वाकर सय्यद और उसके साथियों को गोली मानकर वापिस माता–पिता के पास भाग आती है। उसके जीवन की यह प्रथम प्रवंचना कालांतर में उससे कहलवाती है कि '' मिथ्या परिभाषाएँ देकर तुम सब ठग सकते हो – परम्परा की दुहाई देकर, चरित्र के यषष्लोक उच्चारित करते हुए तुम सब कुछ कर सकते हो, किन्तु हमारे मन की पीड़ा, मर्मान्तक पीड़ा तुम्हारे सारे विष्वासों का खंडन करने के लिए प्रहार है।''[1] पठान सर्दार के प्रतिषोध के भय से रंजना का परिवार लाहोर भाग आता है और वह वहाँ महाविद्यालय में अपनी षिक्षा जारी रखती है। इस आयु में प्रत्येक आकर्षक व्यक्तित्व के प्रति खिंच जाना ही इसकी विषेषता है। कॉलेज परिसर में परिचित टेनिस खिलाड़ी नंदलाल और राजनीति में रूचि रखने वाले अकलंक के प्रति आकर्षित होते हुए अपनी स्थिति का विवरण देते हुए रंजना कहती है '' मन किसी को बिना चाहे अब नहीं रह सकता था।''[2] किसी को चाहने और पाने की चाह रखने में विद्यमान अंतर को रंजना भली–भाँति समझती है। सय्यद को सप्रेम पा जाने की इच्छा से प्राप्त कड़वे अनुभव को वह भुला नहीं पाती है इसलिए नंदलाल के आकर्षण के प्रति वह अपना तर्क यूँ प्रस्तुत करती है '' मैं उसे मात्र चाहती थी और वह चाहकर बहुत कुछ पाना चाहता था, जबकि मैं बिना पाने की इच्छा किये हुए ही चाहने का निष्चय किये हुए थी। क्योंकि एक बार, बल्कि पहली बार का पाना मुझे जब आज तक गरम सलाखों की तरह याद है।''[3]

1. डूबते मस्तुल –– नरेष मेहता –– पृ.सं. 82

2. –– वही –– पृ.सं. 85

3. –– वही –– पृ.सं. 85

वह किसी भी नारी के द्वारा अपने प्रिय अथवा पति को किये गये अपने प्रथम सर्वस्य–समर्पण की पृष्टभूमि में विद्यमान ह्रदय की विषुद्धता और उस समर्पण को स्वीकारनेवाली पुरूष की भोगवादी – प्रवृत्ति के अंतर को स्पष्ट करते हुए कहती है, नारी केवल एक ही पुरूष को सब कुछ दे पाती है। बार–बार उससे आषा करोगे तो विष्वास रखो, वह जुठलाहट से अधिक कुछ भी नहीं होगा। पहला पुरूष, अच्छा हो या बुरा, सब कुछ ले लेता है, किन्तु बाद में तो वह दया, करूणा या कोई एक ही चीज दे पाती है। तुम उसका शरीर पा जाते हो तो समझते हो कि उसका मन भी ठीक उसी तरह पा गये जैसे आठ रूपये में एक मुर्गी खरीद ली है–जो तुम्हें अंडे भी देगी और वक्त पड़ने पर गोष्त भी।''[1]

इसके उपरांत रंजना अपने जीवन में आये हुए टॉमस, जान्सटीन, वॉन–निकोलस और मेजर कुलकर्णी से संबद्ध कथा का विस्तुत–वर्णन करने से पूर्व लेखक से जो कुछ कहती है वह उसके अतीत में पुरूष के प्रति हुई आस्था की विच्छिन्नता और भोगे हुए अंतर्द्वन्द्व का प्रतिफलन ही है, यथा '' और मेरा विचार है कि अब तो देवता भी भूल गये होंगे कि वे पत्थर के नहीं बल्कि और किसी चीज के भी बने हुए थे। इसलिए ऐसा व्यक्ति चाहती थी कि सुनते समय वह पत्थर जरूर बन जाये किन्तु उसके बाद आदमियों की भाँति बोले अवष्य। इसीलिए मैं भी किसी की पूजा आज तक न कर पायी, क्योंकि मुझे आदमी की आवष्यकता थी। नारी अन्यदा हुआ करती है, इसीलिए तुम उसे चरित्रहीन भी कह लेते हो। मैं अन्यदा हूँ, इसलिए चरित्रहीन भी हूँ।

1. डूबते मस्तूल – नरेष मेहता – पृ. 86

2. वही – पृ. 85

चन्द्रमा का कलंक और ग्रहण तुम पूजा–पाठ, दान–दक्षिणा, स्नान–धान से दूर कर लेते हो, किन्तु हमारे कलंक को धो सकना तुम्हारे पुरूषार्थ की बात नहीं है।''[1]

एम.ए. में उत्तीर्ण होने के उपरांत रंजना का विवाह एक रायबहादुर के लड़के से हो जाता है। लेकिन सनकी होने के कारण वह हमेषा रंजना को मारता रहता है। रंजना के माता–पिता की मृत्यु के बाद उसका पति और ससुर उसकी संपत्ति हड़पकर घर से निकाल देते हैं और रंजना एक लड़की को जन्म देकर अनाथ सी ही जाती है क्योंकि लड़की भी बच नहीं पाती है। इसके बाद द्वितीय–महायुद्ध के आरम्भ होने के बाद वह एक विज्ञापन देखकर मुंबई में नर्स का प्रषिक्षण पूरा कर महू के सैनिक अस्पताल में सेवारत हो जाती है। यहाँ रंजना का परिचय विवाहित कल्नल टामस से होता है, जो अपने वैवाहिक–जीवन से निराष होकर रंजना की ओर बढ़ता है, यहीं पर रंजना पाष्चात्य सभ्यता के प्रतीक मदिरा और नृत्य की आढ़ी हो जाती है। तबादले से टामस का अन्यत्र प्रस्थान और अस्पताल में रंजना पर रेनाल्ड का बलात्कार जैसी घटनायें यूँ घटती है कि रंजना स्वंय से घृणा करने लगती है। वह वहाँ से इस्तीफा देकर बैरागढ़ के बन्दियों वाले अस्पताल में चली जाती है, जहाँ उसके जीवन में डॉ. जॉनस्टीन प्रवेष करता है। उसकी प्रेम–भावना से अभिभूत होकर रंजना यह विचारती है कि अ बवह अपने जीवन को अंतहीन प्रवंचना और दिग्विहीन–भटकन बनने नहीं देगी क्योंकि वह एक नारी है और वह जॉनस्टीन के साथ विवाह कर पति और बच्चों से युक्त पारिवारिक–जीवन बितायेगी वह स्पष्ट शब्दों में कहती है ''

1. डूबते मस्तूल – नरेष मेहता – पृ. 95

बमों से नष्ट घर की ईटों को फिर से जोड़–संजोकर इसका रंगकक्ष सजा दूंगी और जहाँ मैं एक फूलमात्र की तरह रह सकूँ। यदि मैं एक बार भी ऐसा कर सकी तो मुझे संतोष होगा–मेरा पति होगा, मेरे बच्चे होंगे और मैं पत्नि तथा माँ हूँगी।''[1]

जॉनस्टीन के समूचे व्यक्तित्व में उसकी षिकारी–प्रवृत्ति से रंजना बेहद नफरत करती है। उसके द्वारा पंछी और खरगोषों

को गोली मार दिये जाने पर रंजना का ह्रदय करूणा से तड़प उठता है।

रंजना और जॉनस्टीन का विवाह हो जाता है और वे आमस्ट्रडॉम में जा बसते हैं, जहाँ रंजना परिचय जॉनस्टीन के मित्र वॉन निकोलस से होता है, जो एक महान संगीतज्ञ और चित्रकार के रूप में बहुत प्रतिष्ठित है। जॉनस्टीन से विवाहिता न होने की स्थिति में वैष्या बनजाने की सम्भावना के पारिवेषिक दबाव से भय–भीत रंजना सामाजिक–सुरक्षा–प्राप्ति की आवष्यकता का अनुभव करती है लेकिन वॉन निकोलस के संगीत और चित्रों का प्रभाव रंजना के ह्रदय पर ऐसा पड़ता है कि वह कुछ–कुछ अनुभव करने लगती है कि आजतक वह जिस चीज की अपेक्षा कर रही थी और जिसे अकलंक से पाने में वह विफल हुई है, कदाचित वह सब कुछ उसे वॉन निकोलस के व्यक्तित्व में मिल सकता है लेकिन तुरंत ही उसके मस्तिष्क में यह प्रष्न उठ खडा होता है कि क्या जॉनस्टीन को त्यागने और निकोलस को अपनाने से उत्पन्न परिवर्तन को सहने और संभालने की क्षमता उस में है ? अपने इस अंतर्द्वन्द्व का संकेत देते हुए वह कहती है '' मैं मानती हूँ कि वॉन का प्रभाव मेरे मन पर होता जा रहा था।

1. डूबते मस्तूल – नरेष मेहता – पृ. 160

किन्तु मैं इस बार अपने को सभी प्रकार के संकल्प–विकल्प से परे ले जाना चाहती थी, क्योंकि किसी भी दूसरे प्रकार के विचार आने का अर्थ था,–भयंकर परिवर्तन। मैं उन दिनों जॉनस्टीन के साथ अधिक से अधिक रहा करती थी और प्रयत्न करती थी कि किसी भी प्रकार वॉन से अकेले में न मिलूँ, क्योंकि मुझे अब अपने पर से बहुत पहले ही विष्वास उठ गया था।''[1]

श्रंजना यथा शक्ति वॉन निकोलस से दूर रहने की चेष्टा करती है, तो दूसरी ओर जॉनस्टीन की घायलों की सेवा के लिए युद्ध–क्षेत्र में जाना पड़ता है। इन्हीं दिनों रंजना अपनी जीवन में दूसरी बार माँ बनती है और उस समय अपने नवजात षिषु और पति के सामीप्य के सुखद अनुभव की याद करते हुए कहती है '' मेरे चेहरे पर कदाचित पहली और अंतिम बार एक वास्तविक पत्नि के माँ बनने की स्वस्थ हँसी आयी थी।''[2] उसके अतीत की ये स्मृतियाँ यह जताती हैं िकवह अपने जीवन में पत्नित्व और मातृत्व दोनों में से किसी को भी स्थाइत्व देने में सफल नहीं हो की। इस बीच वॉन निकोलस रंजना का अप्रतिम सौंदर्य–पूर्ण–चित्र बनाता है जिसे देखकर उसकी रूप–गर्विता बुद्धि उसे निकोलस की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती है और उस समय की अपनी मानसिकता का बयान करते हुए वह कहती है '' मेरे मन में कहीं छुपा हुआ यह भी एक भाव था कि सौंदर्यमयी रंजना को दर्प करने का यह प्रथम अवसर प्राप्त हुआ है। जबकि वॉन निकोलस जैसा रूपवान, कलावान, धनवान, ज्ञानवान, तथा महान् कलाकार एक प्रेमी के रूप में प्राप्त हुआ है।

1. डूबते मस्तूल – नरेष मेहता – पृ. 179

2. वही – पृ. 189

तब तुम बताओ कि मेरे अंदर की दर्पमसी सुन्दरी हेलन का अभिमान करना, क्या युक्तिसंगत, सहज नहीं था ?''[1] लेकिन निकोलस के '' कालाकार भविष्य के प्रति चिंतित रंजना का ह्रदय उसे सचेत करता है कि निकोलस की ओर उसका बढ़ना अनुचित है ह्रदय की इस सलाह को शब्दों में साकार करती वह कहती है '' मेरे अंदर बैठी हुई नारी क्या निर्णय कर पाती अकलंक ? क्योंकि मैं डरती थी कि यदि वॉन जैसा कलाकार मेरे छू लेने पर शाप–भ्रष्ट हो गया तो मैं कहीं की भी नहीं रहूँगी।''[2]

बम्बई लौटकर रंजना तत्काल समझती है कि वह अपने समस्त उलझनों से मुक्त हो गयी है। यहाँ एक चित्रकला प्रदर्षनी में उसका परिचय कल्नल कुलकर्णी के साथ होता है। दूसरी ओर अक्सर निकोलस के पत्र रंजना को मिलते रहते हैं। एक बार वह यहाँ तक लिखता है कि असित के लिये ही सही उसे वापस हॉलैंड लोट जाना चाहिए। रंजना की बुद्धि यह तर्क करती है कि निकोलस रंजना के शरीर को पाने के लिय ही असित का बहाना बना रहा है और इस विचार से रंजना का दर्प फुफ्कार उठता है। वह वॉन निकोलस से प्रतिषोध लेने के लिए कुलकर्णी से विवाह का प्रस्ताव करती है। लेकिन इस विवाह के बाद कुलकर्णी की शंकालू और भोगवादी प्रवृत्ति से वस्तु रंजना को अपनी भूल का एहसास होने लगता है। बुरी तरह शोषित होकर भी अपने अतीत के अनुभवों के कारण रंजना पति से कहती है '' किसी भी सीमा तक मुझे झुकना पड़े, मैं झुकूँगी, क्योंकि मुझे पत्नि कहलाना है ''[2] इतने सारे पुरूषों के संपर्क में आकर रंजना इस जीवन–सत्य से परिचित होती है।

1. डूबते मस्तूल – नरेष मेहता – पृ. 211

2. वही – पृ. 86

कि जब–जब वह पुरूष को प्रेम–पूर्ण ह्रदय समर्पित करने के लिए आगे बढ़ी, तब–तब उसे भीग या तिरस्कार का सामना करना पड़ा और जब उसकी ओर पुरूष की सह्रदयता ने हाथ बढ़ाया, तब खुद रंजना की अहंवादि–बुद्धि ने उसे टोक दिया। अपने जीवन की विवषताओं का बयान करते हुए वह कहती है '' सब रंजना के पास इसी तरह ही तो आये जैसे रंजना का शरीर उनके पुरूष शरीर का ऋण था–कुछ ब्याज लेकर चले गये, कुछ लोगों ने मूलधन के आधार पर कुछ दिनों व्यापार किया, और रंजना ने विद्रोह नहीं किया, बल्कि समझौता किया।''[1] लेकिन इस पुरूष प्रवंचना के साथ अपनी विवषता को भी जोड़ते हुए स्वंय की जीवन–व्याख्या में उसका कथन है '' रंजना, नारी के पुण्य शरीर के रूप में पाप जैसी ही तो है – न इससे कम, न इससे बेष।''[2] '' स्थूल रूप में नारी में ह्रदय की विवषता और बुद्धि के पराजय की कहानी '' ही रंजना का जीवन है।

पुरी में रहने वाले प्रमथ मुखर्जी की इकलौती संतान है वानीरा, जिसका विवाह डॉ. विवेक से होता है। पुत्री के विवाह के बाद प्रमथ बाबू सन्यास जीवन बिताने के लिए मठ में चले जाते हैं और वानीरा–विवेक का एकांत–दाम्पत्य जीवन सुरभित हो उठता है। जहाँ वानीरा का सौन्दर्य विवेक को भाव विभोर–सा कर देता है, वहीं विवेक में शान्त सौम्य व्यक्तित्व के प्रति वानीरा की अनुरक्षित दिनों दिन बढ़ती ही जाती है। देखते–देखते एक वर्ष का समय बीत जाता है, जिसका बोध न वानीरा को ही रहता है न ही विवेक को। विवाह के प्रथम वर्ष गाँठ के अवसर पर अपने दाम्पत्य–जीवन के छोटे–से अतीत को याद कर वानीरा का ह्रदय प्रफुल्ल हो उठता है।

1. डूबते मस्तूल – नरेष मेहता – पृ. 135

2. वही – पृ. 241

वह अपने उस अपरिसीम सुख को चिर–स्थाई बना लेना चाहती है। वह विवेक से कहती भी है '' विवेक। क्या फिर कभी अपनी इस देह और आज के इस मन के साथ, आज के इस बचे–खुचे बीत रहे दिन को अनुभव कर सकूँगी ? यह तो बीतता ही चला जा रहा है विवेक। जबकि मैं इसे अपने में सहेज, बीतने नहीं देना चाहती।''[1] लेकिन मानसिक–यथार्थ यह है कि भाउकता के स्थिति में सुखद प्रतीत होने वाले क्षण कदापि स्थायी नहीं बन पाते हैं, क्योंकि समय की धारा में नये स्थिति–विषेष उत्पन्न होकर इन सुखद क्षणों को चुनौती देने लगते हैं।

डॉ. विवेक और वानीरा के जीवन में यही उक्त परिवर्तन इतने धीरे से प्रवेष करता है कि उसे पहचानकर दोनों के सतर्क होने से पहले ही अवांछित स्थितियों का एक अप्रत्याषित क्रम उनके जीवन में आरम्भ हो जाता है। डॉ. विवेक अर्थ लाभ की अपेक्षा किये दीन–दुःखियों की सेवा में निमग्न हो जाता है और आरम्भ में वानीरा भी इससे संतुष्ट रहती है लेकिन जब डॉ. विवेक की व्यस्तता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसके सम्मुख उनका दाम्पत्य जीवन ही उपेक्षित होने लगता है, तो वानीरा का व्यथापूर्ण नारी ह्रदय कराह उठता है–मैं तुम्हारी व्यस्तता और विवषता दोनों ही बूझती हूँ विवेक! टपने पर झल्लाहट भी होती है। तुम लोकप्रिय हो रहे हो। तुम्हारा नाम होता जा रहा है। पर जब मैं अपने से छिन्न हुआ तुम्हें पाती हूँ तो एक दम टूट जाती हूँ विवेक। क्या कभी सोच सकते हो कि दिन, हफ्तों, महीनों हो जाते हैं रोज–रोज कैसी लम्बी प्रतीक्षा करनी होती है मुझे ? तुम्हें देखे कई–कई दिन हो जाते हैं। सबेरे जब जागती हूँ।

1. दो एकान्त – नरेष मेहता – पृ. सं. 26

तो उस समय तक तुम सड़क पर जा चुके होते हो। केवल तुम्हारी पीठ देखती खिड़की में खड़ी रहती हूँ। रात में कब लौटते हो पता ही नहीं चलता है। हाँ, जब कभी अचानक नींद खुल जाती है और तुम्हें निर्विकार सोये देखती हूँ तो मन कैसा उदास हो जाता है।''[1] लेकिन विवेक के व्यक्तित्व का ह्रदय तत्व ऋग्न अकिंचनों की सेवा को छोड़कर बुद्धिवादी–आत्म केन्द्रीय–सुख में लीन होने के लिए तैयार नहीं है। दूसरी ओर विवेक की देर रात गये तक विवेक का घर से दूर रहना, वानीरा के मन और तन दोनों स्तरों पर अतृप्त रह जाने का कारण बनता है और उसकी लम्बी प्रतीक्षा कूंठा और क्रोध में बदलने लगती है। विवेक और वानीरा दोनों महसूस करने लगते हैं कि अब उनके दाम्पत्य जीवन का एकांत धीर–धीरे '' दो '' में बँटता जा रहा है, जिसे दोनों नहीं चाहते हैं। अनुपस्थिति में वानोरा के लिए एकांत में समय बिताना बहुत कठिन हो जाता है। वह विचारने लगती है कि पुस्तकें पढ़ने और संगीत सुनने में कब तक और कितना समय काटा जा सकता है ? विवेक संबंधी सभी कामों को बड़ी तन्मयता के साथ करते रहने पर भी जीवन के प्रति उसमें एम नीरस–भावना घर करने लगती है। इसी समय एक होटल में अचानक अस्वस्थ होने वाले अंग्रेज व्यापारी क्लाइड से विवेक का परिचय होता है और स्वस्थ होने के बाद क्लाइड विवेक और वानीरा का पारिवारिक मित्र बन जाता है। वह अक्सर उन्हें अपने यहाँ दावतों पर निमंत्रण देने लगता है।

क्लाइड का परिचय वानीरा की मानसिकता में एक अनोखा परिवर्तन ला देता है। उस समय तक दीन–दुःखियों की सेवा में रत–विवेक का समर्थन करने वाली वानीरा

1. दो एकान्त – नरेष मेहता – पृ. 36

विचारने लगती है कि यदि विवेक इसी प्रकार अपने पेषे को सेवा में लगा देगा, तो जीवन के लिए आवष्यक सुख–साधनों को वे कैसे जुटा पायेंगे, क्योंकि '' वैभव की एक चमक होती है जिसे अस्वीकारा नहीं जा सकता तथा इन सब में सर्वोपरि है, भोग। बिना भोगे तो यह धूप, आकाष, घर, गृहस्थी सब व्यर्थ है। जिस प्रकार अनभोगी नारी किसी अर्थ की नहीं तैसे ही अनभोगा पुरूषार्थ, नपुंसकता है।''[1] वानीरा मानती है कि खुलकर संपत्ती–समुपार्जन करने में ही विवेक का पुरूषार्थ सार्थक हो सकता है लेकिन अभावग्रस्त निम्न वर्गीय जीवन से परिचित विवेक अपनी आय बढ़ाने के कोई उपक्रम नहीं करता है। भौतिकवादा सुखों के प्रति वानीरा की रूझान का भान मिलते ही क्लाइड अवसर ढूँड़–ढूँडकर विवेक और वानीरा को कई तोफे देने लगता है, साथ–ही–साथ पिकनिक, मछली मारने और समुद्र स्नान के बहाने वह उन्हें इधर–उधर घुमाने भी ले जाने लगता है। कई बार अपनी व्यस्तता के कारण विवेक नहीं जा पाता है, तो वानीरा अकेला ही सहर्ष क्लाइड के साथ चली जाती है। वानीरा के हर्ष को देखकर विवेक भी संतुष्ट होने लगता है कि आखिर वानीरा अपने मानसिक–तनाव से मुक्त हो पा रही है। लेकिन पति–पत्नि उनके मध्य बढ़ती दरार को पहचान नहीं पाते हैं।

एक दिन रोगी को देखने जाते समय विवेक स्वंय ज्वरग्रस्त हो जाता है और लौटते समय वर्षा में बुरी तरह भीग जाता है। घर पर वानीरा की अनुपस्थिति उसे बहुत खलती है और देरी से लौटने पर वानीरा में भी आत्मग्लानी उमड़ पड़ती है।

1. '' दो एकान्त '' –– नरेष मेहता, पृ.सं. 46

जब कई दिनों तक विवेक का ज्वर कम नहीं होता है, तो क्लाइड की सलाह पर वानीरा विवेक को इलाज के लिए कलकत्ते के मिषनरी अस्पताल में ले जाना चाहती है और विवषता की स्थिति में विवेक मौन रह जाता है। उसके स्वस्थ होने के बाद वानीरा पुरी लौटने से इन्कार करती हुई डिब्रूगढ़ जाने की इच्छा प्रकट करती है, क्लाइड की प्रेरणा से भी विवेक को वही प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ता है।

विवेक और वानीरा के साथ मेजर आनन्द की धनिष्ठता बढ़ने लगती है। डॉ. विवेक पुनः यथावत अपनी व्यस्तता में खोने लगता है, तो दूसरी ओर मेजर आनन्द वानीरा को अपने व्यक्तित्व के प्रभाव–क्षेत्र में लेने की चेष्टा करने लगता है। एक दिन क्लाइड और आनन्द, विवेक और वानीरा को षिकार के लिए आउटिंग पर निमंत्रण देते हैं। विवेक अपनी व्यस्तता के कारण नहीं जा पाता है, लेकिन वानीरा उनके साथ जाने के लिए तैय्यार हो जाती है। यात्रा के दौरान आनन्द का अप्रत्याषित स्पर्ष वानीरा की सुप्त भीगाकांक्षाओं को जागृत करता है। खराब मौसम के कारण ये तीनों जंगल के एक डाकबंगले में रात को ठहर जाने के लिए विवष होते हैं। क्लाइड की अनुपस्थिति में बंगले का वह एकान्त और आनन्द का निसंकोच व्यवहार वानीरा को ऐसे प्रेरित करते हैं कि वह आनन्द को पूर्णतः समर्पित हो जाती है। लेकिन विवेक को छोड़कर इस प्रकार किसी अन्य पुरूष को समर्पित होना वानीरा के लिए कोई नई बात नहीं थी, क्योंकि वह इससे पूर्व क्लाइड को भी कलकत्ता में समर्पित हो चुकी थी। परन्तु घर लौटने पर वानीरा, आनन्द के प्रति अपने समर्पण की स्मृति से विचलित हो उठती है, क्योंकि '' उसे बस एक ही चीज खाती रही कि वह आनन्द के निटक ऐसे सहज कैसे हो गयी ? जबकि क्लाइड के निकट वह चिर लालसा रही है, तथा है। कल रात जो हुआ वह नया नहीं था। अवांछित भी नहीं था पर

www.ignited.in

व्यक्ति, स्थान तो सर्वथा अवांछित थे। उसे अपने भीतर ही दरार अनुभव हुई। उस दरार के पार एक ही रात में विवेक खड़ा हो गया। संबंध का दर्पण क्या अब कभी दरारहीन नहीं हो सकेगा ?"[1] वानीरा का बुद्धितत्व उसे सांस्वना देने लगता है कि अप्रत्याषित एकान्त में एक स्त्री और पुरूष का पारस्परिक समर्पण कोई अवांछित घटना नहीं है, लेकिन उसका ह्रदय–तत्व उसे कोसने लगता है कि उसने पति विवेक साथ एक बड़ा छल किया है। ह्रदय और बुद्धि के इस द्वन्द्व में बुद्धि ही विजयी होने लगती है, अन्यथा वानीरा क्लाइड और आनन्द के साथ अपने सामाजिक संपर्क को समाप्त करने के साथ अपने अतीत में किये गये अवांछित कार्य के लिए कोई प्रायष्चित्त भी करती। बुद्धि–तत्व की अधीना होने के कारण ही वानीरा, आनन्द के साथ संपर्क बनाये रखती है और एक दिन शाम को दन दोनों की बातें बड़े नाटकीय ढंग से एक मान्य पर विवेक सुन लेता है, जिससे उसे ज्ञात होता है कि आनन्द का तबादला इलाहाबाद के लिए होने वाला है। डॉ. विवेक अपेक्षाकृत अधिक सौम्य एवं संवेदन प्रवृत्ती का होने के कारण कदापि पत्नि को इस उछृंखलता के प्रति क्रोध दर्षा नहीं पाता है, उल्टे वह यह विचारने लगता है कि अपनी व्यावहायिक–व्यस्तता के कारण पत्नि के साथ उसकी अपेक्षाओं के अनुरूप व्यवहार करने में असफल हो रहा है।

1. दो एकान्त – नरेष मेहता – पृ. 108

एक दिन सिर दर्द के कारण डिस्पेन्सरी से वापस लौटे विवेक को वानीरा के कमरे से आनन्द और उसकी तनावपूर्ण बातें सुनायी पड़ती हैं, विवेक को ज्ञात होता है कि वानीरा को आनन्द का गर्भ ठहरा है और वह लद्दाख जाने वाला है। इस बिन्दू पर विवेक जहाँ अपने अंतस् से जुझने लगता है, वहीं वानीरा संभवनीय चारित्रियक लांछन की कल्पना से घबरा उठती है। उसे शंका होने लगती है कि कदाचित उसके इस गर्भ की बात विवेक को ज्ञात है, फिर भी वह उससे क्यों कोई प्रष्न नहीं कर रहा है ? इसी उधेड़बुन में " उसे लगा कि अब वह स्वतः कुछ नहीं रह गयी थी, देह में आनन्द और विचारों में विवेक। उसे लगा कि आज प्रथम बा रवह विवेक के निकट निर्वसन हुई।"[1] वानीरा महसूस करने लगती है कि उसके प्रति विवेक का मौन एक प्रतिषोधात्मक प्रतिक्रिया ही है, जिसे सहन करना अब उसके लिए असंभव है। वह अपने भावि अवैध संतान के जन्म को लेकर पुनः द्वन्द्व की स्थिति में पड़ जाती है, कभी उसकी बुद्धि कल्पना करने लगती कि इस बार भी उसे मृत–षिषु ही पैदा होगा जो उसके भविष्य का काँटा नहीं बन सकता है, तो तुरंत उसका ह्रदय मृतषिषु की कल्पना मात्र से सिहर उठता है, यथा–" अब उसे यही लगता कि या तो वह जीव इसी अवस्था में समाप्त हो जाए या फिर पहले षिषु की तरह यह भी और वह फफक–फफक कर प्रायः रो पड़ती एक दिन उसके उदरस्य वाला यह जीव जब चक्रवर्ती की भाँति जय घोष करता उसके सामने आ खड़ा होगा तब वह क्या करेगी।"[1]

1. दो एकान्त – नरेष मेहता – पृ. 172

कमलेष्वर प्रणीत उपन्यास " काली आँधी " प्रजातांत्रिक राजनीति की चालबाजियों और उठा–पटक का अखाड़ा–सा प्रतीत होता है, फिर भी उपन्यास की एक मात्र प्रभावषाली नारी पात्री मालती के अंतरंग में घटित उहायोह और हलचल के संक्षिप्त, लेकिन लेखक के मार्मिक विष्लेषण से इस उपन्यास को मनोवैज्ञानिक कोटि की कृतियों में रखदेना अनुचित न होगा। उपन्यास में वर्णित मालती के अंतर्द्वन्द्व कोटि की कृतियों में रखदेना अनुचित न होगा। उपन्यास में वर्णित मालती के अंतर्द्वन्द्व की पृष्ठ–भूमि में एक ओर उसके पत्नि और माता रूप है, तो दूसरी ओर उसका नेता–रूप है।

1. काली आँधी – कमलेष्वर – पृ. 119

बैरिष्टर प्रकाषराय की पुत्री मालती के रंग–रंग में बचपन से ही सफलता प्राप्ती की तीव्र अभिलाषा समाई हुई है। पिता उसे उच्च–षिक्षा के लिए विलायत भेजना चाहते हैं, परन्तु उन्हीं दिनों उसका परिचय जगदीष वर्मा (जग्गी बाबू) से होता है, जो कालांतर में प्रणय का सोपानपार करते हुए दांपत्य में परिणत होता है। इसके उपरांत उसका जीवन एक ऐसा अप्रतयाषित मोड़ लेता है कि उसका पारिवारिक जीवन खण्डित हो बिखर जाता है, कारण यह कि मालती म्युनिसिपल चुनाव के माध्यम राजनीति में ऐसा पदार्पण करती हैं कि संसदीय चुनाव में भोपाल से चुने जाने तक लगातार सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ती ही जाती हैं और इस सिल–सिले में वह यह भी देख नहीं पाती है कि वह जीवन में क्या खो चुकी है और राजनैतिक सफलता का नषा उसके नारी ह्रदय को किस सीमा तक खोखला करता गया है। उसकी इस स्थिति का स्मरण उसे ही कराते हुए पति जगदीष वर्मा कहता है। अब तुम भी कुछ नहीं हो। सिर्फ एक सफलता रह गई हो।"[1]

परिशिष्ट –

1. हृदय की परख – चतुरसेन शास्त्री – गंगा पुस्तक माला प्रकाशन – लखनऊ

– प्र.सं. 1918, सं. 1967

2. नयी पौध – नागार्जुन – किताब महल, इलाहाबाद–1, सं. 1967

3. जल टूटता हुआ – रामदरश मिश्र – नेशनल पब्लिशिंग, नई दिल्ली – 1967

4. खोगी नहीं राधिका – ऊषा प्रयिंवदा – अधर प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली – 1967

5. अनदेखे अनजान पुल – राजेन्द्र यादव – राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

– सं.1969

6. कुलटा – राजेन्द्र यादव – अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली–1, 1969

7. कृष्णकली – शिवानी – भारतीय ज्ञापपीठ प्रकाशन, वाराणासी – सं. 1969

8. कड़ियाँ – भीष्म साहनी – राजकमल प्रकाशन, दिल्ली – 1970

9. आपका बंटी – मन्नू भंडारी – अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. नयी दिल्ली – 1971

www.ignited.in

11. काँचघर – रामकुमार भ्रमर – राजपाल एण्ड सन्स – दिल्ली – 1971

12. अंतराल – मोहन राकेश – राजकमल प्रकाशन, दिल्ली – सं. 1972

13. सूरजमुखी अंधेरे के–कृष्ण सोबती – राजकमल प्रकाशन, दिल्ली – सं. 1972

14. दोहरी आग की लपट – डॉ. देवराज, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली – सं. 1973

15. दूरियाँ – रजनी पनिकर – मैकगिलन कं. ऑफ इंडिया, दिल्ली – 1974

16. प्रेम अपवित्र नदी – लक्ष्मीनारायण लाल, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली–सं. 1974

17. बात एक औरत की – कृष्णा अग्निहोत्री – चिन्मय प्रकाशन, जयपुर –सं. 1974

18. सीढ़ियाँ – शशिप्रभा शास़्ी – नेशनल पब्लिशिंग, नयी दिल्ली – सं. 1974